पं. दौलतराम जी कृत

छहढाला

प्रकाशक

भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षा बोर्ड

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, नशियाँ रोड,

सांगानेर- 303902 जयपुर (राज.)

फोन- 0141- 2730552, 3941222

भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षा बोर्ड

- **प्रेरणा** : मुनिपुंगव श्री 108 सुधासागर जी महाराज
- **अर्थसौजन्य :**
- **संस्करण** : प्रथम, अप्रैल, 2005
- **प्रतियां** : 4400
- **मूल्य** : 8 /- (पुनः प्रकाशन हेतु)

पं. दौलतराम जी

आपका जन्म वि. सं. 1855 (ई.सन् 1798-99) में हाथरस, उत्तरप्रदेश में हुआ था। आपके पिता का नाम टोडरमल था। आपका विवाह अलीगढ़ निवासी सेठ चिन्तामणि जी की सुपुत्री से हुआ। आप छींटे छापने का कार्य किया करते थे। आपका अध्ययन आरम्भ में बहुत कम हुआ लेकिन बाद में अपने परिश्रम और सतत स्वाध्याय से आपने जैन सिद्धान्त का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। कहा जाता है कि आप छपाई का काम करते हुए भी 50-60 श्लोक, गाथायें, पद कंठस्थ कर लिया करते थे। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। वि. सं. 1923 में आपका देहावसान हुआ। वर्तमान में आपकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ उपलब्ध हैं- 1. छहढाला 2. दौलत विलास (आध्यात्मिक पद संग्रह)। आपके द्वारा रचित छहढाला ग्रन्थ ने तो आपको अमर बना दिया है।

क्र.	विषय	पृ. क्र.
1.	पहली ढाल	3
2.	दूसरी ढाल	16
3.	तीसरी ढाल	26
4.	चौथी ढाल	42
5.	पांचवीं ढाल	56
6.	छठवीं ढाल	65
7.	मूलपाठ	79

मुद्रक

जयपुर प्रिंटिंग सेन्टर, जयपुर

0141- 2751552

पहली ढाल

भूमिका

पहली ढाल में सर्वप्रथम मंगलाचरण में तीन लोक में सारभूत वीतरागता और विज्ञानता (केवलज्ञान) को नमस्कार किया गया है। इन्हें ही मोक्ष का कारण एवं मोक्ष स्वरूप बताया गया है। पश्चात् ग्रन्थ के उद्देश्यों का निर्देश करते हुए कहा गया है कि तीनों लोकों में अनन्तानन्त जीव हैं। जो सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं। दुःख को हरण करने वाली और सुखोत्पादक शिक्षा करुणावान् गुरु देते हैं कि- मोह के वशीभूत होते हुए यह जीव अनन्तकाल पर्यन्त निगोद पर्याय में अतीव दुःख भोगते हैं। एकेन्द्रिय पर्याय में अनिवर्चनीय दुःख सहन करते हुए बहुत काल व्यतीत होता है। त्रस पर्याय की प्राप्ति तो चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति सदृश अतीव दुर्लभ है। इस त्रस पर्याय में भी चारों गतियों सम्बन्धी भयानक दुःख-भार सहन करना पड़ता है।

मंगलाचरण

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार,नमहुँ, त्रियोग सम्हारिकैं ॥

अन्वयार्थ- (वीतराग) राग-द्वेष रहित **(विज्ञानता)** विशिष्ट ज्ञान केवलज्ञान **(तीन भुवन में)** तीनों लोकों में **(सार)** उत्तम वस्तु **(शिवस्वरूप)** आनन्द स्वरूप, और **(शिवकार)** मोक्ष प्राप्त कराने वाला है, उसे मैं **(त्रियोग)** तीन योगों को **(सम्हारिकैं)** सम्हाल करके **(नमहुँ)** नमस्कार करता हूँ।

अर्थ - वीतराग विज्ञानता अर्थात् रागद्वेष से रहित केवलज्ञान तीनलोक में सर्वोत्तम है। यही आनंद स्वरूप है और मोक्ष प्राप्त कराने वाला है अतः मैं (कवि दौलतराम) मन-वचन और काय को सम्हाल कर केवलज्ञान को नमस्कार करता हूँ ।

ग्रन्थ का उद्देश्य

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त ।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥1 ॥

अन्वयार्थ- (त्रिभुवन में) तीनों लोकों में **(जे)** जो **(अनन्त)** अनन्त **(जीव)** प्राणी हैं, वे **(सुख)** सुख को **(चाहैं)** चाहते हैं और **(दुखतैं)** दुख से **(भयवन्त)** डरते हैं **(तातैं)** इसलिए **(गुरु)** निर्ग्रन्थ गुरु **(करुणाधार)** दया करके

(दुखहारी) दुःख को नष्ट करने वाली और **(सुखकार)** सुख देने वाली **(सीख)** शिक्षा **(कहैं)** कहते हैं।

अर्थ - तीन लोक में जो अनन्त जीव हैं वे सभी सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत हैं, इसलिए निर्ग्रन्थ गुरु ने करुणा से द्रवीभूत होकर दुखी जीवों को ऐसा उपदेश दिया है जो दुःख को दूर करने वाला और सच्चे आत्मसुख को देने वाला है।

गुरु शिक्षा सुनने का उपदेश और संसार में भ्रमण का कारण

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥2 ॥

अन्वयार्थ- (भवि) हे भव्यजीवों! **(जो)** यदि **(अपनो)** अपना **(कल्यान)** हित **(चाहो)** चाहते हो (तो) **(ताहि)** गुरु की उस शिक्षा को **(मन)** चित्त **(थिर)** स्थिर-एकाग्र **(आन)** करके **(सुनो)** सुनो (कि इस संसार में प्रत्येक जीव) **(अनादि)** अनादिकाल से **(मोहमहामद)** मोहरूपी तेज मदिरा को **(पियो)** पीकर **(आपको)** अपने आप को **(भूल)** भूलकर **(वादि)** व्यर्थ **(भरमत)** भटकता है।

अर्थ - हे भव्य जीव ! यदि तुम अपना कल्याण या अपनी भलाई चाहते हो तो गुरु का उपदेश मन को एकाग्र करके सुनो। अनादिकाल से यह संसारी जीव मोह रूपी मदिरा को पी रहा है और अपने आत्म स्वरूप को भूलकर व्यर्थ ही भटक रहा है ।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता और निगोद के दुःख

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री-तन धार ॥3 ॥

अन्वयार्थ- (तास) उस संसार में, **(भ्रमण की)** भटकने की **(कथा)** कहानी **(बहु)** बड़ी **(है)** है **(पै)** तो भी **(यथा)** जैसी **(मुनि)** पूर्वाचार्यों ने **(कही)** कही है ''तथा'' उसी प्रकार ''मैं भी'' **(कछु)** थोड़ी-सी **(कहूँ)** कहता हूँ [कि इस प्राणी का] **(निगोद मँझार)** निगोद में **(एकेन्द्री)** एकेन्द्रिय जीव का **(तन)** शरीर **(धार)** धारण करके **(अनन्त)** अनन्त **(काल)** काल **(बीत्यो)** पूर्ण हुआ है।

अर्थ - इस जीव के संसार में भटकने की बहुत लम्बी कहानी है। तो भी कुछ (थोड़ी सी) जैसी पूर्व में मुनिजनों ने कही है वैसी ही मैं (कवि) कहता हूँ। इस जीव ने निगोद में एक-इन्द्रिय का शरीर धारण करके अनन्तकाल बिताया है।

निगोद के दुःख और वहाँ से निकलने का क्रम

एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावकभयो,पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥4 ॥

अन्वयार्थ-''निगोद में यह जीव'' **(एक श्वास में)** एक श्वास में **(अठदसबार)** अठारह बार **(जन्म्यो)** पैदा हुआ **(मर्‌यो)** मरा और **(दुख भार)** दु:खों का समूह **(भर्‌यो)** सहा [और वहाँ से] **(निकसि)** निकल कर **(भूमि)** पृथ्वीकायिक जीव **(जल)** जलकायिक जीव **(पावक)** अग्निकायिक जीव **(पवन)** वायुकायिक जीव और **(प्रत्येक वनस्पति)** प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव **(थयो)** हुआ।

अर्थ - निगोद में इस जीव ने एक श्वास मात्र (एक मुहूर्त जो दो घड़ी अर्थात् 48 मिनिट का होता है और जिसके 3773 श्वास होते हैं उनमें यह जीव 66336 बार जन्म-मरण करता है) एक श्वास में अठारह बार जन्म और मरण करता हुआ, दु:ख के बोझ को सहता हुआ, वहाँ से निकलकर यह जीव पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और प्रत्येक वनस्पति (ऐसे पाँच तरह के एकेन्द्रिय) स्थावर जीव हुआ है ।

तिर्यंच गति में त्रस पर्याय की दुर्लभता उसके दु:ख

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धरधर मर्‌यो सही बहुपीर ॥5॥

अन्वयार्थ-(ज्यों) जैसे **(चिन्तामणी)** चिन्तामणि रत्न **(दुर्लभ)** कठिनता से **(लहि)** प्राप्त होता है **(त्यों)** वैसे ही **(त्रसतणी)** त्रस की **(पर्याय)** पर्याय **(दुर्लभ)** कठिनता से **(लही)** प्राप्त की। वहाँ भी **(लट)** लट **(पिपील)** चींटी **(अलि)** भौंरा **(आदि)** इत्यादि के **(शरीर)** शरीरों को **(धर धर)** बार बार धारण करके **(मर्‌यो)** मरा और **(बहु)** बहुत **(पीर)** पीड़ा **(सही)** सहन की।

अर्थ - जैसे चिन्तामणि-रत्न बड़ी कठिनता से मिलता है, उसी प्रकार त्रस पर्याय बड़ी कठिनता से मिली। त्रस पर्याय में भी जब इस जीव ने लट (द्वीन्द्रिय), चींटी (त्रीन्द्रिय), भौंरा (चारइन्द्रिय) आदि के शरीर को बार-बार धारण किया और मरा तो वहाँ भी बहुत दु:ख ही सहन किया ।

तिर्यंच गति में असैनी और सैनी पंचेन्द्रिय के दु:ख

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल-पशु हति खाये भूर॥6॥

अन्वयार्थ-वह जीव **(कबहूँ)** जब कभी **(पंचेन्द्रिय)** पंचेन्द्रिय **(पशु)** तिर्यंच **(भयो)** हुआ ''तो'' **(मन बिन)** मन के बिना **(निपट)** अत्यन्त **(अज्ञानी)** मूर्ख **(थयो)** हुआ और **(सैनी)** सैनी भी **(ह्वै)** हुआ तो **(सिंहादिक)** सिंह आदिक **(क्रूर)** दुष्ट जीव **(ह्वै)** होकर **(निबल)** अपने से कमजोर **(भूर)** बहुत **(पशु)** तिर्यंचों को **(हति)** मार-मार कर **(खाये)** खाया।

अर्थ - जब कभी भाग्यवश यह जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय पशु हुआ तो मन के बिना ज्ञानहीन रहा और ज्ञानहीन होने का दु:ख सहा। जब संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ तो सिंह आदि हिंसक जीव होकर निर्बल पशुओं को मारकर खाता रहा।

तिर्यंच गति में पशुओं के और भी दु:ख

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनिकरि खायो अतिदीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास॥7॥

अन्वयार्थ-''यह जीव तिर्यंच गति में'' **(कबहूँ)** कभी **(आप)** स्वयं **(बलहीन)** कमजोर **(भयो)** हुआ ''तो'' **(अतिदीन)** असमर्थ होने से **(सबलनि करि)** अपने से बलवान् प्राणियों के द्वारा **(खायो)** खाया गया ''और'' **(छेदन)** छेदा जाना **(भेदन)** भेदा जाना **(भूख)** भूख **(पियास)** प्यास **(भार वहन)** बोझ का ढोना **(हिम)** सर्दी **(आतप)** गर्मी आदि का **(त्रास)** दु:ख [सहन किया]

अर्थ -जब कभी यह जीव स्वयं निर्बल हुआ तो बलवान् पशुओं के द्वारा खाया गया और बहुत दु:खी हुआ। जीवन भर छेदन-भेदन, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि अनेक प्रकार के दु:ख सहता रहा ।

तिर्यंच गति में दु:खों की अधिकता और नरकगति प्राप्ति का कारण

बध-बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने ।
अति संक्लेश-भावतैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो॥8॥

अन्वयार्थ-''उस तिर्यंचगति में जीव ने और भी'' **(वध)** मारा जाना, **(बंधन)** बांधा जाना, **(आदिक)** इत्यादिक **(घने)** बहुत **(दुख)** दु:ख सहन किये जो **(कोटि)** करोड़ों **(जीभतैं)** जिह्वाओं से भी **(भने न जात)** कहे नहीं जा सकते। इसलिए **(अति संक्लेश)** अत्यन्त खोटे **(भावतैं)** भावों से **(मर्‌यो)** मरा तो **(घोर)** भयानक **(श्वभ्रसागर में)** नरक रूपी समुद्र में **(पर्‌यो)** जा पड़ा।

अर्थ - इस तरह तिर्यंच गति में इस जीव को मारे जाने में, बाँधे जाने आदि रूप इतने भारी दु:ख सहन करना पड़े कि जिनका वर्णन करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी पूरा नहीं किया जा सकता। इस दु:खमय अवस्था में यह जीव बहुत ही बुरे खोटे भावों से मरकर भयानक नरकगति रूप समुद्र में जा गिरा।

नरक की भूमि और नदीजन्य दु:ख

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसै नहिं तिसो ।
तहाँ राधश्रोणित-वाहिनी, कृमिकुलकलित देह-दाहिनी॥9॥

अन्वयार्थ- (तहाँ) उस नरक में **(भूमि)** जमीन को **(परसत)** छूने से **(इसो)** ऐसा **(दुख)** दु:ख ''होता है, कि'' **(सहस)** हजारों **(बिच्छू)** बिच्छुओं

के **(डसे)** काटने पर भी **(तिसो)** वैसा दुःख **(नहिं)** नहीं होता है और **(तहाँ)** उस नरक में **(कृमिकुलकलित)** छोटे-छोटे क्षुद्र कीड़ों से भरी हुई **(देहदाहिनी)** शरीर में दाह पैदा करने वाली तथा **(राधश्रोणित वाहिनी)** पीप और खून को बहाने वाली (एक वैतरणी नामक) नदी है।

अर्थ - इस जीव को नरक की भूमि के स्पर्श करने मात्र से ही इतना दुःख होता है कि जितना कि शरीर में हजार बिच्छुओं के द्वारा काटने पर भी नहीं होता है। वहाँ नरक में कीड़ों के समूह से भरी पीप और खून की नदी बहती है जो शरीर में दाह उत्पन्न करने वाली है।

नरक में सेमर वृक्ष, सर्दी और गर्मी के दुःख

सेमर-तरु- दल जुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥10॥

अन्वयार्थ- (तत्र) उस नरक में **(असिपत्र ज्यों)** तलवार की धार के समान पैने **(दलजुत)** पत्ते वाले **(सेमरतरु)** सेमर के वृक्ष हैं, जो **(देह)** शरीर को **(असि ज्यों)** तलवार के समान **(विदारैं)** फाड़ देते हैं तथा **(तत्र)** उस नरक में **(ऐसी)** इस प्रकार की **(शीत)** सर्दी और **(उष्णता)** गर्मी **(थाय)** होती है कि **(मेरुसमान)** मेरु पर्वत के बराबर लोहे का ढेर भी **(गलि)** गल **(जाय)** सकता है।

अर्थ - वह नरक भूमि सेमर वृक्षों से भरा है, जिनमें तलवार की धार के समान नुकीलें पत्ते लगे हैं। जो नारकी जीव के शरीर को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। वहाँ सर्दी और गर्मी इतनी अधिक होती है कि मेरु पर्वत के समान विशाल लोहे का गोला भी गल या पिघल जाता है ।

नरक में अन्य नारकियों, असुर कुमारों द्वारा उदीरित दुःख और प्यास के दुःख -

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिडावै दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु-नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ।।11॥

अन्वयार्थ-''उन नरकों में नारकी एक दूसरे के'' **(देह के)** शरीर के **(तिल-तिल)** तिल के दाने बराबर **(खण्ड)** टुकड़े **(करैं)** कर देते हैं और **(प्रचण्ड)** अत्यन्त **(दुष्ट)** क्रूर **(असुर)** असुरकुमार जाति के देव ''आपस में'' **(भिड़ावैं)** भिड़ा देते हैं-लड़ा देते हैं। तथा इतनी **(प्यास)** प्यास ''लगती है, कि'' **(सिन्धुनीरतैं)** समुद्र भर का पानी पीने से भी **(न जाय)** नहीं मिट सकती है **(तो पण)** किन्तु **(एक बूँद)** एक बूँद भी **(न लहाय)** नहीं मिलती।

अर्थ - नारकी जीव आपस में कलह करते हैं और एक दूसरे के शरीर के तिल के बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर देते हैं। दुष्ट प्रकृति के असुरकुमार देव उन

नारकी जीवों को आपस में लड़ा देते हैं। नरक में नारकी जीव को इतनी अधिक प्यास लगती है कि यदि वह सारे समुद्र का पानी पी लेवें तो प्यास नहीं बुझ सकती फिर भी उसे पानी की एक बूँद भी पीने को नहीं मिलती है।

नरक में भूख, आयु और मनुष्य गति की प्राप्ति

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागरलौं सहै, करम जोगतैं नरगति लहै ॥12॥

अन्वयार्थ- (उन नरकों में इतनी भूख लगती है कि) **(तीन लोक को)** तीनों लोकों का **(नाज)** अनाज **(जु)** भी **(खाय)** खा लेवे ''तो भी'' **(भूख)** भूख **(न)** नहीं **(मिटै)** मिट सकती है ''किन्तु खाने को'' **(कणा)** एक दाना भी **(न लहाय)** नहीं मिलता **(ये)** ऐसे **(दुख)** दुःख ''नारकी'' **(बहुसागर लौ)** बहुत सागरों तक **(सहै)** सहता है **(करम जोगतैं)** किसी विशेष शुभकर्म के उदय से **(नरगति)** मनुष्यगति **(लहै)** पाता है-प्राप्त करता है।

अर्थ - नरक में इतनी तेज भूख लगती है कि तीनों लोक का अनाज खा लेने पर भी भूख नहीं मिट सकती, लेकिन वहाँ अनाज का एक दाना भी खाने को नहीं मिलता। इस प्रकार नरक के दुःख बहुत सागर तक इस जीव ने सहन किये हैं फिर कभी शुभ कर्म का संयोग मिलने पर यह जीव मनुष्य गति प्राप्त करता है।

मनुष्य गति में गर्भ निवास और प्रसवजन्य दुःख

जननी उदर बस्यो नवमास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥13॥

अन्वयार्थ-''मनुष्यगति में भी यह जीव'' **(नवमास)** नव महीने तक **(जननी)** माता के **(उदर)** पेट में **(बस्यो)** रहा ''तब वहाँ पर'' **(अंग)** शरीर के **(सकुचतैं)** सिकुड़े रहने से **(त्रास)** दुःख **(पाई)** पाया ''और'' **(निकसत)** निकलते समय **(जो)** जो **(घोर)** भयंकर **(दुख)** दुःख **(पाये)** प्राप्त किये **(तिनको)** उन दुःखों को **(कहत)** कहते **(ओर)** अन्त **(न आवे)** नहीं आ सकता।

अर्थ-यह जीव मनुष्य गति में माता के गर्भ में नौ माह तक रहता है जहाँ शरीर के सिकुड़े रहने से बहुत कष्ट पाता है। माता के गर्भ से बाहर निकलते समय जो अपार कष्ट यह जीव पाता है वह कहना संभव नहीं है।

बाल्यावस्था, जवानी और बुढ़ापे के दुःख

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनों कैसे रूप लखै आपनो ॥14॥

अन्वयार्थ-''मनुष्य गति में इस जीव ने'' **(बालपने में)** बाल्यावस्था में

(ज्ञान) ज्ञान ही **(न लह्यो)** नहीं पाया और **(तरुण समय)** जवानी में **(तरुणीरत)** स्त्री में लीन **(रह्यो)** रहा तथा **(बूढ़ापनों)** वृद्धावस्था **(अर्धमृतकसम)** अधमरे के समान ''रही, ऐसी हालत में जीव'' **(आपनो)** आत्मा का **(रूप)** स्वरूप **(कैसे)** किस प्रकार **(लखै)** देख सकता है ?

अर्थ - बाल्यावस्था में इस जीव को भले-बुरे का ज्ञान नहीं होता । युवावस्था में वह युवा-स्त्री के साथ भोग- विलास में लीन रहता है और वृद्धावस्था तो आधे मरे हुये के समान हो जाती है। ऐसी दशा में यह जीव अपने आत्मा के स्वरूप को कैसे जान सकता है ।

देवगति में भवनत्रिक के दुःख

कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर-तन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो,मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥15॥

अन्वयार्थ-''इस जीव ने'' **(कभी)** कभी **(अकामनिर्जरा)** अकामनिर्जरा **(करै)** की ''तो, मरने पर'' **(भवनत्रिक)** भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियों में **(सुरतन)** देवपर्याय **(धरै)** धारण की ''परन्तु वहाँ भी'' **(विषय चाह)** पाँचों इन्द्रियों के विषयों की चाह रूप **(दावानल)** भयंकर अग्नि में **(दह्यो)** जला और **(मरत)** मरते समय **(विलाप करत)** रो-रो कर **(दुख)** दुःखों को **(सह्यो)** सहन किया।

अर्थ - कभी इस जीव ने अकाम-निर्जरा की तो मरकर भवनवासी,व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में से किसी एक प्रकार के देव का शरीर धारण किया, परन्तु वहाँ भी इन्द्रिय-विषयों की चाह रूपी भयानक अग्नि में जलता रहा और मरते समय रो-रो कर दुःखों को सहन किया।

देवगति में वैमानिक देवों के दुःख

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँते चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥16॥

अन्वयार्थ- (जो) यदि **(विमानवासी)** वैमानिक देव **(हू)** भी **(थाय)** हुआ तो **(सम्यग्दर्शन बिन)** सम्यग्दर्शन के बिना **(दुख)** दुःख **(पाय)** पाया। और **(तहँते)** वहाँ से **(चय)** मरकर **(थावर)** स्थावर जीव का **(तन)** शरीर **(धरै)** धारण किया **(यों)** इस तरह यह जीव **(परिवर्तन)** पँच परावर्तनों को **(पूरे करै)** पूर्ण किया करता है।

अर्थ - यदि यह जीव स्वर्ग में विमानवासी देव भी हुआ तो भी उसने वहाँ सम्यग्दर्शन के बिना दुःख ही पाया। देवगति से मरकर पुनः यह जीव स्थावर के शरीर को धारण करता है। इस प्रकार यह जीव संसार में निरन्तर भ्रमण करता है अर्थात् पंच परिवर्तन रूप संसार के दुःखों को भोगता रहता है।

शिक्षा

इस पहली ढाल में हमें दो बातें समझ लेनी चाहिए। पहली बात यह है कि संसार में चार गतियां हैं- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। जीव अपनी अज्ञानता के कारण चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ बहुत प्रकार से दुःख पाता है। दूसरी बात यह है कि चारों गतियों में दुःख का कारण चूंकि जीव की अपनी अज्ञानता या मोह है। अतः हम अज्ञानता या मोह से बचें तो संसार के दुःखों से पार हो सकते हैं।

प्रश्न 1. इस ग्रन्थ का नाम छहढाला क्यों रखा गया ?

उत्तर - छहढाला के 6 प्रकरणों में से प्रत्येक प्रकरण की अलग-अलग छंद से रचना की गई है। पूर्ण रचना में छह प्रकार के छंदों की ढाल (चाल) होने से इस ग्रन्थ का नाम छहढाला रखा गया।

प्रश्न 2. तीन लोक कहाँ और किसके आधार पर अवस्थित हैं।

उत्तर - अनंतानंत आकाश द्रव्य के बहुमध्यभाग के जितने प्रदेशों में छह द्रव्यों का आवास है, उसे लोक कहते हैं। अधोलोक,मध्य और ऊर्ध्व के भेद से यह तीन प्रकार का है और तीन वातवलयों के आधार पर अवस्थित है।

प्रश्न 3. तीनों लोकों में कौन जीव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर - 1. अधोलोक में-असुर कुमार, राक्षसादि भवनवासी-व्यन्तर देवों एवं नारकियों का निवास है। 2. मध्यलोक में-मनुष्य, पशु, पक्षी आदि तथा ज्योतिषी देव अर्थात् सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारों का निवास है। 3. ऊर्ध्वलोक में-कल्पवासी एवं कल्पातीत देवों का तथा सिद्ध भगवान् का निवास है।

प्रश्न 4. वीतराग और विज्ञानता किसे कहते हैं ?

उत्तर - रागयुक्त जीव द्रव्य की शुद्धावस्था अर्थात् अठारह दोषों से रहित अवस्था होना वीतरागता है और विशिष्ट ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान का नाम विज्ञानता है।

प्रश्न 5. अनन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस राशि में आय न होकर केवल व्यय होता रहे, फिर भी उसमें कमी न आये,उसे अनन्त कहते हैं।

प्रश्न 6. करुणा का क्या अर्थ है ?

उत्तर- संसार के सभी प्राणी सुखी रहें, आत्मा के इस भाव का नाम करुणा है। सम्यग्दृष्टि जीव का यह सुकोमल परिणाम शुभराग है किन्तु मोह का काम कदापि नहीं है।

प्रश्न 7. अनादि किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसका आदि अर्थात् प्रारम्भ न हो उसको अनादि कहते हैं।

प्रश्न 8. मोह किसे कहते हैं ?

उत्तर - पर-पदार्थों में अपनत्व बुद्धि का होना मोह कहलाता है।

प्रश्न 9. अनन्त काल किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस काल को सर्वावधि ज्ञान भी नहीं जान सकता मात्र केवलज्ञान ही जान पाता है, उस अपरिमित काल को अनन्त काल कहते हैं।

प्रश्न 10. भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – रत्नत्रय की प्राप्ति की योग्यता युक्त जीव को भव्य कहते हैं।

प्रश्न 11. भव्य जीव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर – भव्य जीव तीन प्रकार के होते हैं – 1. निकट 2. दूर 3. दूरान्दूर।

प्रश्न 12. निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर – साधारण नामकर्म के उदय से एक शरीर के आश्रित अनन्तानन्त जीवों का समान रूप से रहना निगोद कहलाता है अथवा जीव की एक पर्याय विशेष जिसमें एक श्वास के समय का अठारहवाँ भाग पूरा होते ही मरण हो जाता है।

प्रश्न 13. निगोद के भेद एवं उनके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर – निगोद के दो भेद हैं 1. नित्य निगोद 2. इतर निगोद

1. नित्य निगोद – जिस जीव ने अनादिकाल से आज तक त्रस की पर्याय प्राप्त नहीं की वह नित्य निगोद कहलाता है।

2. इतर निगोद – निगोद से निकलकर दूसरी पर्यायें पाकर पुन: निगोद में उत्पन्न होना इतर निगोद कहलाता है।

प्रश्न 14. निगोदिया जीव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर – निगोदिया जीव सर्वलोक में रहते हैं।

प्रश्न 16. नित्य निगोद से जीव किस परिणाम से निकलते हैं ?

उत्तर – नित्य निगोद से जीव लेश्या की मन्दता से निकलते हैं।

प्रश्न 17. श्वास किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी की एक धड़कन (स्पंदन) को श्वास कहते हैं।

प्रश्न 18. यह जीव निगोद से निकलकर कहाँ उत्पन्न हुआ ?

उत्तर – यह जीव निगोद से निकलकर पृथ्वीकायिक आदि पाँच स्थावरों में उत्पन्न हुआ।

प्रश्न 19. निगोद से निकले हुए जीव इसी क्रम से पर्यायें प्राप्त करते हैं या इन पर्यायों में एक क्रम भी होता है ?

उत्तर – निगोद से निकलने वाले प्रत्येक जीव का क्रम से ही उत्पन्न होना आवश्यक नहीं है। जैसे चक्रवर्ती के वर्धन कुमारादि 923 पुत्रों ने निगोद से एकदम मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लिया था।

प्रश्न 20. साधारण एवं प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस वनस्पति में एक शरीर के अनेक जीव स्वामी होते हैं, वह साधारण वनस्पति है तथा जिस वनस्पति में एक शरीर का एक ही जीव स्वामी होता है,

उसे प्रत्येक वनस्पति जीव कहते हैं।

प्रश्न 21. चिन्तामणि रत्न किसे कहते हैं ?

उत्तर – इच्छित पदार्थ देने वाले रत्नविशेष को चिन्तामणि रत्न कहते हैं।

प्रश्न 22. तिर्यंचगति में कौन-कौन से दु:ख हैं ।

उत्तर – तिर्यंचगति में अनेक प्रकार के दु:ख होते हैं। सिंह, व्याघ्र अपने से कमजोर पशुओं को खा जाते हैं, आकाश में गिद्ध, चील उड़ते हुए पक्षियों को झपट कर पकड़ लेते हैं, जल में बड़े-बड़े मच्छ छोटी-छोटी मछलियों को खा जाते हैं, यदि इनसे बच गये तो भूख-प्यास, रोग के दु:खों को सहन करना पड़ता है, छेदन-भेदन के दु:ख बहुत हैं। सांड को बैल बनाया जाता है, सुअर के बाल उखाड़े जाते हैं। यदि इनसे बच भी गये तो म्लेच्छ, भील, धीवर आदि मनुष्य उसे मार डालते हैं। शक्ति से अधिक बोझा ढोने का, शीत, उष्ण, बध, बंधन आदि का दु:ख सहन करना पड़ता है। वर्तमान में तो पूरे देश में प्रतिदिन बूचड़खानों में लाखों पशु काटे जाते हैं, इस प्रकार तिर्यंचगति में अनेकों दु:ख हैं जिनकों करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न 23. नरकगति में किन कारणों से जाते हैं ?

उत्तर – अत्यन्त संक्लेश परिणामों से मरण करने पर, बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह के होने पर तीव्र कषाय रूप परिणाम तथा कृष्णादि अशुभ लेश्याओं के माध्यम से नरकगति में जाते हैं।

प्रश्न 24. जीव को तिर्यंचगति में जन्म क्यों लेना पड़ता है ?

उत्तर– मायाचारी अर्थात् मन, वचन एवं काय की कुटिलता से मिथ्या उपदेश देने से परिग्रह में अधिक ममत्व रखने से शीलव्रत भंग करने से, नील एवं कापोत लेश्यायुक्त परिणामों से, मरण काल में आर्तध्यान करने से, जाति एवं कुल में दूषण लगाने से तथा स्वर्ण, घी-तेल आदि में मिलावट करके बेचने से तिर्यंचगति में जन्म लेना पड़ता है।

प्रश्न 25. श्वभ्र किसे कहते हैं ?

उत्तर– श्वभ्र नाम नरक का है, वहाँ जन्म लेते ही अनिर्वचनीय दु:ख भोगने पड़ते हैं, फिर भी वहाँ अकालमरण नहीं होता।

प्रश्न 26. जीव को नरक गति में जन्म क्यों लेना पड़ता है ?

उत्तर– मनुष्य लोक में माँस और मधु खाने से, बलि देने से, पर द्रव्यहरण करने से, परस्त्री सेवन से, असत्य कटु एवं निन्दा आदि वचन बोलने से, बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखने से, वञ्चना और कुटिलता करने से, सप्तव्यसन सेवन करने से, तीव्र लोभ करने से, रात्रि भोजन करने से, स्त्री, बालक, वृद्ध एवं साधुओं के साथ विश्वासघात करने से, जैनधर्म की और धर्मात्माओं की निन्दा करने से एवं जीवों का घात करने से जीव नरकगति में जन्म लेते हैं।

प्रश्न 27. मेरु पर्वत कहाँ अवस्थित है, और उसका प्रमाण क्या है ?

उत्तर – मेरु पर्वत जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में अवस्थित है। इसकी नींव एक हजार योजन जमीन में है और ऊँचाई 99 हजार योजन, जमीन पर इसकी मोटाई दस हजार योजन और चूलिका की ऊँचाई चालीस योजन प्रमाण है।

प्रश्न 28. मेरु बराबर लोह पिण्ड शीत और गर्मी से कैसे गल जाता है ?

उत्तर – छन्द में जो गलि शब्द आया है, उसके दो अर्थ है गलना और पिघलना। जिस प्रकार गर्मी में मोम पिघल जाता है, उसी प्रकार सुमेरु पर्वत के बराबर लोहे का गोला गर्म बिल में फेंका जाये तो वह बीच में ही पिघलने लगता है तथा जिस प्रकार ठण्ड व बरसात में नमक गल जाता है उसी प्रकार सुमेरु के बराबर लोहे का गोला ठण्डे बिल में फेंका जाये तो बीच में ही गलने लगता है।

प्रश्न 29. कौन-कौन से नरक में गर्मी और कौन-कौन से नरक में सर्दी की अधिकता है ?

उत्तर – पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पाँचवें नरक के 2/3 भाग में अत्यधिक गर्मी है और पाँचवें नरक के 1/3 भाग में, छठे तथा सातवें नरक में भीषण सर्दी है।

प्रश्न 30. छन्द में सेमर वृक्ष के पत्तों का विशेषण असि शब्द तो आ ही गया फिर असिपत्र शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है ?

उत्तर- तिलोयपण्णत्ति अधिकार दो में असिपत्र नाम का वन कहा गया है, जो इस प्रकार है-जिनके सम्पूर्ण अंग भीषण अग्नि की ज्वाला-समूह से जल रहे हैं, ऐसे वे नारकी वृक्षों की शीतल छाया जानकर असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं। यदि उपर्युक्त छन्द में आये हुए असिपत्र शब्द का अर्थ वन कर लिया जाय तो छन्द का सहज अर्थ इस प्रकार हो सकता है कि-उन नरकों के असिपत्र वन में पत्तों से युक्त सेमर नामक वृक्ष हैं, उनके पत्ते तलवार के सदृश शरीर का विदारण करते हैं।

प्रश्न 31. असुर किसे कहते हैं ?

उत्तर – भवनवासी देवों के एक कुल का नाम है, इन असुरकुमार देवों में अम्वावरीष नामक देव तीसरे नरक पर्यन्त जाकर नारकियों को स्वयं भी दु:ख देते हैं तथा आपस में लड़ाते हैं, उनका दु:ख देखकर प्रसन्न होते हैं।

प्रश्न 32. क्या नारकियों को मात्र अम्वावरीष नाम के असुर देव भिडाते हैं ?

उत्तर – नहीं, सिक्तानन, असिपत्र, महाबल, महाकाल, श्याम, सबल, रुद्र, अम्वावरीष, विलसित, महारुद्र, महाखर, काल, अग्निरुद्र, कुम्भ और वैतरणी आदि असुरकुमार जाति के देव तीसरी पृथ्वी तक जाकर नारकी जीवों को क्रोध उत्पन्न कराते हैं।

प्रश्न 33. यदि वहाँ अनाज नहीं मिलता तो नारकी जीव क्या खाते हैं ?

उत्तर – वे नारकी मध्यलोक के हाथी-बैल आदि सर्व पशु-पक्षियों के सड़े हुए कलेवरों की दुर्गन्ध से अनन्तगुणी दुर्गन्धित, अत्यन्त तीखी और कड़वी काचरी से अनन्त गुणी कड़वी मिट्टी खाते हैं। प्रथम नरक के नारकी जो मिट्टी खाते हैं, यदि वह मिट्टी यहाँ आ जावे तो वह अपनी दुर्गन्ध से एक कोस में स्थित सर्व

मनुष्य-तिर्यंचों को, दूसरे नरक की मिट्टी डेढ़ कोस में, तीसरे नरक की दो कोस में, चौथे नरक की अढ़ाई कोस में, पाँचवे नरक की तीन कोस में, छठे नरक की साढ़े तीन कोस में और सातवें नरक की मिट्टी अपनी दुर्गन्ध से चार कोस में स्थित जीवों को मार सकती है। जो प्राणी यहाँ कन्दमूल आदि अभक्ष्य भक्षण करते है, उन्हें नरकों में ऐसी दुर्गन्धित मिट्टी का भोजन करना पड़ता है।

प्रश्न 34. सागर किसे कहते हैं ?

उत्तर – दो हजार धनुष अथवा आठ हजार हाथों का एक कोस और चार कोस का एक योजन होता है। ऐसे एक योजन लम्बे, चौड़े और गहरे गड्ढे को उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न एक दिन से सात दिन पर्यन्त के मेंढे के बाल लेकर जिसका दूसरा टुकड़ा नहीं हो सके इतने छोटे टुकड़े कर उन रोमखण्डों से भरे, पश्चात् सौ-सौ वर्ष में एक-एक रोम खण्ड निकालें, जितने समय में वह गड्ढा खाली हो जावे उतने समय अर्थात् काल को एक व्यवहार पल्य कहते हैं। व्यवहार पल्य से असंख्यातगुणा बड़ा उद्धारपल्य और इस उद्धारपल्य से असंख्यात गुणा बड़ा अद्धापल्य होता है। 10 कोड़ा-कोड़ी व्यवहार पल्यों का एक व्यवहार सागर होता है। 10 कोड़ा-कोड़ी उद्धार पल्यों का एक उद्धार सागर होता है। इससे द्वीप और समुद्रों का प्रमाण जाना जाता है तथा 10 कोड़ा-कोड़ी अद्धा पल्यों का एक अद्धा सागर होता है। इस अद्धा सागर से नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के आयु आदि आठों कर्मों की स्थिति का प्रमाण जाना जाता है ।

प्रश्न 35. कोड़ा-कोड़ी किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो जावे, उसे एक कोड़ा-कोड़ी कहते हैं।

प्रश्न 36. नरकों में यह दु:ख कम से कम और अधिक से अधिक कितने समय तक भोगने पड़ते हैं ?

उत्तर – उन नरकों में यह जीव ऐसे अपार दु:ख कम से कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक तैंतीस सागर पर्यन्त भोगता है।

प्रश्न 37. मनुष्यगति किसे कहते हैं ?

उत्तर – मनुष्यगति नामकर्म के उदय से मनुष्य में पैदा होना।

प्रश्न 38. गर्भस्थ बालक नौ माह में अपने शरीर को किस क्रम से पुष्ट करता है ?

उत्तर – माता के रज और पिता के वीर्य के आधार से शरीर की रचना करने वाला यह जीव दशरात्रि तक कललरूप पर्याय में, दशरात्रि तक कलुशिकृत पर्याय में तथा दशरात्रि तक स्थिरीभूत पर्याय में रहता है। दूसरे मास में बुदबुदा रूप में, तीसरे मास में घनभूत, चौथे में मांसपेशी, पाँचवें में पाँच पुलक, छठे में अंगोपांग और चर्म तथा सातवें में रोम एवं नखों की उत्पत्ति होती है। आठवें मास में स्पन्दन क्रिया और नौवें या दसवें मास में निर्गमन होता है।

प्रश्न 39. वृद्धावस्था को अर्द्धमृतक सम क्यों कहा गया है ?

उत्तर – जैसे मृतक मनुष्य के आँख-कान होते हुए भी वह देख नहीं सकता, सुन नहीं सकता, पैर होते हुए भी चल नहीं सकता, उसी प्रकार वृद्धावस्था में नेत्र, स्पष्ट देख नहीं पाते, कर्ण स्पष्ट सुन नहीं पाते, लकड़ी का सहारा लेते हुए भी पैर लड़खड़ाते हैं, सर्व इन्द्रियाँ शिथिल हो जाने से वह धर्म-कर्म कुछ भी कर नहीं सकता इसलिए, उसे अर्द्धमृतक सम कहा गया है।

प्रश्न 40. अकामनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनायास बिना इच्छा के भूख, प्यास, वेदना, रोग एवं आपत्ति-विपत्ति आ जाने पर समता परिणामों से सहन कर लेना अर्थात् मन्द कषाय से सहन कर लेना अर्थात् मन्द कषाय द्वारा फल देकर कर्मों का स्वयं झड़ जाना अकामनिर्जरा कहलाती है।

प्रश्न 41. देवगति किसे कहते हैं ?

उत्तर – देवगति नामकर्म के उदय से देवों में जन्म लेना।

प्रश्न 42. परिवर्तन किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप संसार चक्र में परिभ्रमण करना परिवर्तन कहलाता है।

प्रश्न 43. परिवर्तन पूर्ण कराने हेतु देवगति से पुनः एकेन्द्रियों में उत्पन्न क्यों कराया गया ?

उत्तर – जहाँ से परिवर्तन प्रारम्भ किया था वहाँ पहुँचने पर ही उसकी पूर्णता होगी। विशेष यह है कि सामान्य त्रसकाय का उत्कृष्ट काल मात्र एक पूर्व कोटि अधिक दो हजार सागर ही है, यदि इस काल के भीतर जीव मोक्ष नहीं गया तो उसे स्थावरकाय में जाना ही पड़ता है।

प्रश्न 44. कौन-कौन निकाय के देव एकेन्द्रियों में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर भवनत्रिक सम्बन्धी तीन निकायों के और वैमानिकों में मात्र सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव एकेन्द्रियों में उत्पन्न हो सकते हैं। इतना विशेष है कि कोई भी देव सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म-बादर अग्निकायिक, सूक्ष्म बादर वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न नहीं होते, मात्र बादर पृथ्वीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पति कायिकों में ही उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न 45. देव एकेन्द्रिय क्यों होते हैं ?

उत्तर – मरण के छह माह पूर्व मन्दारमाला के मुरझाने से तथा शरीर और वस्त्रालंकारों की कान्ति क्षीण हो जाने से अपना मरण निकट जान जो मिथ्यादृष्टि देव विलख-विलख कर दुःखी होते हैं एवं जो अपने अवधिज्ञान से स्त्रियों के घृणित गर्भालय को देखकर संक्लेश करते हैं। वे देव गर्भालय के निवास से तो बच जाते है और आयु के अंत में मरकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न हो जाते हैं, अतः पर्याय विशेष से ग्लानि न करके संसार से ही संवेगित हो मोक्ष प्राप्ति के उपाय का पुरुषार्थ करना चाहिये।

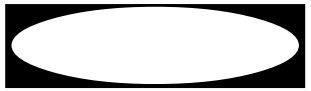

भूमिका

दूसरी ढाल में चतुर्गति-भ्रमण व दुःखों का निदान, सात तत्त्वों का विपरीत श्रद्धान, कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का स्वरूप, गृहीत-अगृहीत के भेद से मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का वर्णन विशद रूप से किया गया है। अन्त में, संसार के दन्द-फन्द को छोड़कर आत्म-स्वरूप में लीन होने की शिक्षा दी गई है।

संसार परिभ्रमण के कारण

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥1॥

अन्वयार्थ-'यह जीव' **(मिथ्या दृग-ज्ञान-चर्ण वश)** मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के अधीन होकर **(ऐसे)** इस प्रकार **(जन्म मर्ण)** जन्म और मरण के **(दुख)** दुःखों को **(भरत)** भोगता हुआ ''चारों गतियों में'' **(भ्रमत)** भटकता फिरता है **(तातैं)** इसलिए **(इनको)** इन तीनों को **(सुजान)** अच्छी तरह जानकर **(तजिये)** छोड़ देना चाहिए ''इसलिए'' **(तिन)** उन तीनों का **(संक्षेप)** संक्षेप में **(बखान)** वर्णन **(कहूँ)** कहता हूँ सो **(सुन)** सुनो।

अर्थ-यह जीव मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र के वशीभूत होकर चारों गतियों में भ्रमण करता रहता है और जन्म-मरण के दुःख को भोगता रहता है। इसीलिये इन मिथ्या दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अच्छी तरह जानकर छोड़ देना चाहिए। इन तीनों का मैं (दौलतराम) संक्षेप में वर्णन करता हूँ। उसे सुनिये ।

अगृहीत मिथ्यादर्शन और जीव तत्त्व का स्वरूप

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिनमांहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरति चिनमूरति अनूप॥2॥

अन्वयार्थ- (जीवादि) जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर निर्जरा और मोक्ष **(प्रयोजनभूत)** मतलब के **(तत्त्व)** तत्त्व हैं **(तिनमाहिं)** उनमें **(विपर्ययत्व)** उलटा **(सरधै)** श्रद्धान करना 'अगृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है' **(चेतन को)** आत्मा का **(रूप)** स्वरूप **(उपयोग)** देखना जानना या दर्शन ज्ञान **(है)** है और वह **(बिनमूरति)** अमूर्तिक **(चिनमूरति)** चैतन्यमय और **(अनूप)** उपमारहित है।

अर्थ - जीवादि सात तत्त्व अपने लिये सारभूत हैं उनमें यह जीव अनादि काल से विपरीत श्रद्धान करता आ रहा है यही अगृहीत मिथ्यादर्शन है। वास्तव में,

चेतन या आत्मा का स्वरूप देखना-जानना है और वह अमूर्तिक, चैतन्यरूप और उपमारहित है।

जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव-चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।।3॥

अन्वयार्थ-(**पुद्गल**) पुद्गल (**नभ**) आकाश (**धर्म**) धर्म (**अधर्म**) अधर्म और (**काल**) काल (**इनतैं**) इनसे (**जीव-चाल**) जीव का स्वभाव या परिणाम (**न्यारी**) भिन्न (**है**) है ''किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से'' (**ताकों**) उस आत्मस्वभाव को (**न**) नहीं (**जान**) जानकर (**विपरीत**) उल्टा (**मान करि**) मानकर (**देह में**) शरीर में (**निज**) आत्मा की (**पिछान**) पहचान (**करैं**) करता है।

अर्थ - इस आत्मा का स्वभाव पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म और काल इन पाँच द्रव्यों से भिन्न है क्योंकि ये पाँचों द्रव्य अजीव हैं। अज्ञानी जीव इस बात को नहीं जानता और इससे विपरीत या उल्टा मानकर शरीर को ही आत्मा समझता है।

मिथ्यादृष्टि का शरीर आदि परपदार्थ के प्रति विचार

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥4॥

अन्वयार्थ-''मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से मानता है कि'' मैं (**सुखी**) सुखी (**दुखी**) दुःखी (**रंक**) गरीब (**राव**) राजा हूँ (**मेरे**) मेरे (**धन**) रुपया, पैसा आदि (**गृह**) मकान (**गोधन**) गाय, भैंस आदि (**प्रभाव**) बड़प्पन (**सुत**) सन्तान तथा (**तिय**) स्त्री हैं (**मैं**) मैं (**सबल**) बलवान् (**दीन**) निर्बल (**बेरूप**) कुरूप (**सुभग**) सुन्दर (**मूरख**) मूर्ख और (**प्रवीन**) चतुर हूँ।

अर्थ - मिथ्यादर्शन के प्रभाव से यह जीव मानता है कि मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं धनी हूँ। धन मेरा है, गाय-बैल मेरे हैं, मेरा बड़ा प्रभाव है, पुत्र मेरे हैं, स्त्री मेरी है, मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं कुरूप हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं चतुर हूँ।

अजीव और आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन॥5॥

अन्वयार्थ-''मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से'' (**तन**) शरीर के (**उपजत**) उत्पन्न होने को (**अपनी**) अपनी आत्मा की (**उपज**) उत्पन्न होना (**जान**) मानता है और (**तन**) शरीर के (**नशत**) मरण को (**आपको**) आत्मा का (**नाश**) मरण (**जान**) मानता है और (**तन**) शरीर के (**नशत**) मरण को (**आपको**)

आत्मा का (**नाश**) मरण (**जान**) मानता है और (**ये**) जो (**रागादि**) राग, द्वेष आदि (**प्रगट**) स्पष्ट रूप से (**दुख दैन**) दुःख दाता हैं (**तिनही को**) उन्हीं को (**सेवत**) सेवन करता हुआ (**चैन**) सुख (**गिनत**) मानता है।

अर्थ - अज्ञानी जीव शरीर की उत्पत्ति में अपनी अर्थात् आत्मा की उत्पत्ति समझता है और शरीर के नष्ट होने को अपना (आत्मा का) मरण मानता है। यह अजीव-तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। जो राग, द्वेष आदि भाव स्पष्ट रूप से दुःख देने वाले हैं उन्हीं राग-द्वेष भाव का सेवन करता है और उसे सुख मानता है। दुःखदायी कर्म के आने को सुख का कारण मानना ही आस्रव-तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

बन्ध और संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

शुभअशुभ बन्ध के फल मँझार, रति अरति करै निजपद विसार।
आतम-हित-हेतु विराग-ज्ञान, ते लखै आपको कष्ट दान॥6॥

अन्वयार्थ-''मिथ्यादृष्टि प्राणी मिथ्यादर्शन के प्रभाव से'' (**निज पद**) आत्मस्वरूप को (**विसार**) भूलकर (**बन्ध के**) कर्मबन्ध के (**शुभ**) अच्छे (**फल मँझार**) फलों में (**रति**) प्रेम (**करै**) करता है और बन्ध के (**अशुभ**) खोटे (**फल मँझार**) फलों में (**अरति**) द्वेष (**करै**) करता है। तथा, जो (**विराग**) रागद्वेष का अभाव और (**ज्ञान**) सम्यग्ज्ञान (**आत्महित**) आत्मा के हित के (**हेतु**) कारण हैं (**ते**) उनको (**आपको**) आत्मा के (**कष्ट दान**) दुःखदायी (**लखै**) मानता है।

अर्थ -अज्ञानता वश यह जीव अपने आत्मा के स्वरूप को भूलकर पूर्व में बंधे हुये शुभ-कर्मों के फल में राग करता है और अशुभ कर्मों का फल भोगने में द्वेष करता है। यह बंध-तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। आत्मा की भलाई तो वैराग्य और सम्यग्ज्ञान में है परन्तु मिथ्यादर्शन के कारण इस जीव को वैराग्य और सम्यग्ज्ञान की बातें दुःखदायी जान पड़ती है। यह संवर-तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

निर्जरा और मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान एवं अगृहीत मिथ्याज्ञान

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान॥7॥

अन्वयार्थ-''मिथ्यादृष्टि प्राणी मिथ्यात्व के प्रभाव से'' (**निज शक्ति**) अपनी आत्मा की शक्ति को (**खोय**) खोकर ''पाँचों इन्द्रियों के विषयों की'' (**चाह**) इच्छा को (**न**) नहीं (**रोके**) रोकता है तथा (**निराकुलता**) आकुलता के अभाव को (**शिवरूप**) मोक्ष का स्वरूप (**न जोय**) नहीं मानता है। (**याही**) इसी (**प्रतीतिजुत**) श्रद्धासहित (**कछुक ज्ञान**) जो कुछ थोड़ा सा ज्ञान होता है (**सो**) वह (**दुखदायक**) कष्टदायक (**अज्ञान**) अगृहीत मिथ्याज्ञान (**जान**) जानना चाहिए।

अर्थ -मिथ्यादृष्टि जीव अपनी इच्छाओं को नहीं रोकता इसलिये वह अपनी शक्ति को व्यर्थ में खोता है। यह निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है । वह आकुलता या चिन्ताओं से रहित मोक्ष-तत्त्व को नहीं समझ पाता । यह मोक्ष-तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। इस प्रकार विपरीत श्रद्धान के साथ जो कुछ ज्ञान होता है। वह दु:खदायक अगृहीत-मिथ्याज्ञान है ऐसा जानना चाहिए।

अगृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्र।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥8॥

अन्वयार्थ- (जो) जो **(विषयनि में)** पाँचों इन्द्रियों के विषयों में **(इन जुत)** अगृहीत-मिथ्यादर्शन और अगृहीत-मिथ्याज्ञान सहित **(प्रवृत्त)** प्रवृत्ति करता है **(ताको)** उसको **(मिथ्याचारित्र)** अगृहीत-मिथ्या-चारित्र **(जानो)** समझना चाहिए **(यों)** ऐसे **(निसर्ग)** अगृहीत **(मिथ्यात्वादि)** मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ''कहे गये हैं'' **(अब)** अब **(जेह)** जो **(गृहीत)** गृहीत मिथ्या-दर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं **(तेह)** उनको **(सुनिये)** सुनो।

अर्थ - मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ पाँच इन्द्रियों के जो विषय हैं उनमें प्रवृत्ति (आचरण) करना ही मिथ्याचारित्र है, ऐसा समझना चाहिए । इस तरह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र, जो स्वभाव से ही अर्थात् अनादिकाल से जीवों के बने रहते हैं उनका वर्णन किया गया। अब गृहीत-मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र जो दूसरों के उपदेश से होता है, उनका वर्णन अच्छी तरह से सुनो।

गृहीत मिथ्यादर्शन और कुगुरु का स्वरूप

जे कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥9॥
धारैं कुलिंग लहि महत-भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल-नाव।

अन्वयार्थ- (जो) जो **(कुगुरु)** मिथ्यागुरु की **(कुदेव)** मिथ्यादेव की और **(कुधर्म)** मिथ्याधर्म की **(सेव)** सेवा करता है, वह **(चिर)** बहुत काल तक **(दर्शन मोह)** मिथ्यादर्शन को **(एव)** ही **(पोषै)** पुष्ट करता है। **(जेह)** जो **(अन्तर)** भीतर-अन्तरंग में **(रागादिक)** रागद्वेष आदि दोषों को **(धरैं)** धारण करते हैं और **(बाहर)** ऊपर प्रत्यक्ष में **(धन अम्बरतैं)** धन और कपड़े वगैरह से **(सनेह)** प्रेम-आशक्ति करते हैं। और **(महतभाव)** महात्मा पने को **(लहि)** पाकर **(कुलिंग)** खोटे-खोटे भेषों को **(धारैं)** धारण करते हैं **(ते)** वे **(कुगुरु)** कुगुरु कहलाते हैं, और वे कुगुरु **(जन्म-जल)** संसार रूपी समुद्र में **(उपल-नाव)** पत्थर की नौका के समान हैं।

अर्थ -जो खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्म की सेवा करता है वह सदा दर्शन-मोहनीय कर्म को ही मजबूत करता है। जो भीतर मन में राग-द्वेष भाव करते हैं और बाहर धन-धान्य, वस्त्र आादि से ममत्व रखते हैं। स्वयं को बड़ा मानकर खोटा-भेष धारण करते हैं वे कुगुरु अर्थात् खोटे गुरु कहलाते हैं। जो संसार रूपी जल में तिरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं। जो स्वयं तो डूबती ही है साथ ही उसमें बैठने वाला भी डूब जाता है ।

कुदेव का लक्षण

जे रागद्वेष-मल करि मलीन, वनिता-गदादिजुत चिह्न चीन ॥10॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण-छेव।

अन्वयार्थ- (जे) जो **(रागद्वेष)** राग और द्वेष रूपी **(मल करि)** मैल से **(मलीन)** मैले हैं और **(वनिता)** स्त्री तथा **(गदादिजुत)** गदा वगैरह **(चिह्न)** चिह्नों से **(चीन)** पहचाने जाते हैं **(ते)** वे **(कुदेव)** खोटे देव हैं **(जू)** जो **(शठ)** मूर्ख **(तिनकी)** उन कुदेवों की **(सेवा)** सेवा **(करत)** करते हैं **(तिन)** उनका **(भवभ्रमण)** संसार में भटकने का **(छेव)** अन्त **(न)** नहीं होता।

अर्थ - राग-द्वेष रूपी मैल से मलिन हैं, जो स्त्री, गदा आदि अस्त्र-शस्त्र के चिह्न से पहचाने जा सकते हैं वे सब कुदेव अर्थात् खोटे देव हैं। इनकी अर्थात् कुदेव की सेवा वही अज्ञानी लोग करते हैं जो देव के सच्चे स्वरूप को नहीं जानते । अत: उनके संसार में भ्रमण का कभी अन्त नहीं हो पाता।

कुधर्म और गृहीतमिथ्यादर्शन का लक्षण

रागादि-भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरण-खेत ॥11॥
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥12॥

अन्वयार्थ- (रागादि) राग और द्वेष आदि **(भाव हिंसा)** भावहिंसा **(समेत)** सहित तथा **(त्रस)** त्रस और **(थावर)** स्थावरों के **(मरण)** घात के **(खेत)** स्थान **(दर्वित)** द्रव्यहिंसा **(समेत)** सहित **(जे)** जो **(क्रिया)** क्रियायें हैं **(तिन्हें)** उन्हें **(कुधर्म)** मिथ्याधर्म **(जानहु)** जानना चाहिए **(तिन)** उनके **(सरधै)** श्रद्धान करने से **(जीव)** प्राणी **(अशर्म)** दु:ख **(लहै)** पाता है। **(याकूँ)** इस कुगुरु-कुदेव और कुधर्म के श्रद्धान को **(गृहीत मिथ्यात्व)** गृहीत मिथ्यादर्शन **(जान)** जानना चाहिए **(अब)** अब **(गृहीत)** गृहीत **(अज्ञान)** मिथ्याज्ञान को **(सुन)** सुनो।

अर्थ -राग-द्वेष रूप भाव-हिंसा से युक्त जो क्रियायें हैं, वे सब क्रियायें कुधर्म हैं। इस प्रकार कुगुरु, कुदेव और कुधर्म में जो जीव श्रद्धा रखता है वह अज्ञानी जीव सदा दु:ख पाता है। इसे ही गृहीत-मिथ्यादर्शन समझो। अब गृहीत मिथ्याज्ञान

क्या है उसे सुनिये।

गृहीत मिथ्याज्ञान का लक्षण

एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि रचित श्रुतको अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥13॥

अन्वयार्थ- **(एकान्तवाद)** एकान्तरूप कथन से **(दूषित)** खोटे **(विषयादिक)** पाँचों इन्द्रियों के विषय आदिक को **(पोषक)** पुष्ट करने वाले **(कपिलादि रचित)** कपिल आदि के द्वारा बनाये हुए **(अप्रशस्त)** खोटे **(समस्त)** सब **(श्रुत)** शास्त्रों का **(अभ्यास)** पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना **(कुबोध)** गृहीत मिथ्याज्ञान है, वह **(बहु)** बहुत **(त्रास)** दुःख **(देन)** देने वाला है।

अर्थ-जो एकान्त (पक्ष) से दूषित हैं और जो विषय-वासनाओं के पोषक होने से निन्दनीय हैं ऐसे रागी-द्वेषी अज्ञानी जनों के द्वारा रचे गये शास्त्रों का अध्ययन करना गृहीत मिथ्याज्ञान है। यह बहुत दुःख देने वाला मिथ्याज्ञान है।

गृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण

जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञान-हीन, जे जे करनी तन करन-छीन॥14॥

अन्वयार्थ- **(जो)** जो **(ख्याति)** प्रसिद्धि **(लाभ)** फायदा और **(पूजादि)** मान्यता एवं आदर आदि की **(चाह धरि)** इच्छा से **(देहदाह)** शरीर पीड़ित करने वाले **(आतम अनात्म के)** आत्मा और पर वस्तुओं के **(ज्ञान)** ज्ञान से **(हीन)** रहित **(तन)** शरीर को **(छीन)** कमजोर **(करन)** करने वाले **(विविधविध)** अनेक प्रकार के **(करनी)** कार्य हैं ''वे सब'' **[मिथ्याचारित्र]** मिथ्याचारित्र कहलाते हैं।

अर्थ-अपनी ख्याति, धन, सम्मान आदि की इच्छा से तपस्या करके शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट देना तथा आत्मा क्या है ? शरीर क्या है ? इसको जाने बिना केवल शरीर को कृश (दुर्बल) करने वाली (हिंसामयी खोटी) क्रियायें करना गृहीत-मिथ्याचारित्र कहलाता है ।

मिथ्याचारित्र और संसार के त्याग का उपदेश

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित-पंथ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग।।15॥

अन्वयार्थ- **(ते)** उन **(सब)** सब **(मिथ्याचारित्र)** मिथ्या-चारित्रों को **(त्याग)** छोड़कर **(अब)** अब **(आतम के)** आत्मा के **(हित)** भलाई के **(पंथ)** रास्ते में **(लाग)** लगकर **(जगजाल)** संसार के जाल में **(भ्रमण)** भटकने का **(त्याग देहु)** त्याग कर देना चाहिए **(दौलत)** हे दौलतराम! **(अब)** अब **(निज आतम)** अपनी आत्मा में **(सुपाग)** अच्छी तरह लीन होओ।

अर्थ - इन सब मिथ्या आचरण को छोड़कर अब अपनी आत्मा की भलाई के मार्ग पर लगना चाहिए। संसार के जंजाल में भटकना छोड़कर हे दौलतराम! अब अपनी आत्मा में अच्छी तरह से लीन होने का प्रयास करो।

शिक्षा

इस दूसरी ढाल के अध्ययन से हमें तीन बातें समझ लेना चाहिए-

1. हमारी दृष्टि हमारा ज्ञान और हमारा आचरण जब ठीक नहीं होगा तब तक संसार में जन्म-मरण की पीड़ा हमें भोगना पड़ेगी।

2. हम अपने भीतर झांककर देखें, आत्म-अवलोकन करें कि कहीं हम अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप से विमुख तो नहीं हो रहे हैं। हम शरीर को ही आत्मा मानकर तो नहीं जी रहे हैं। रागद्वेष करने में ही अपना हित तो नहीं मान रहे हैं। शुभ और अशुभ कर्मों के फल में हर्ष-विषाद करने से बच पा रहे हैं या नहीं। आत्मा का हित करने वाले वीतराग-भावों को कष्टप्रद तो नहीं मान रहे हैं और निराकुल अवस्था को पाने की ललक हमारे भीतर सदा बनी रहती है या नहीं।

3. हम वीतरागता का पोषण करने वाले देव-शास्त्र गुरु की मन-वचन-काय से सेवा करें। रागद्वेष से मलिन देव और गुरु की सेवा तथा संसार बढ़ाने वाले शास्त्रों के अध्ययन से बचें। आत्म कल्याण की पवित्र भावना से अहिंसक जीवन शैली अपनाएं।

प्रश्न 1. अगृहीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर - जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित सात तत्त्वों के विपरीत श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं और इस विपरीत श्रद्धान सहित जो ज्ञान है वह अगृहीत मिथ्याज्ञान और उस सहित क्रिया अगृहीत मिथ्याचारित्र कहलाती है।

प्रश्न 2. उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर - चेतना की परिणति विशेष का नाम उपयोग है या जीव का जो भाव वस्तु के ग्रहण करने के लिए प्रयुक्त होता है, उसे उपयोग कहते हैं या जो परिणाम चैतन्य को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं रहता, उसे उपयोग कहते हैं।

प्रश्न 3. जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच द्रव्य अजीव हैं और इनमें पृथक् स्वभाव वाला जीव द्रव्य चैतन्य स्वरूप है किन्तु इस प्रकार की यथार्थ श्रद्धा न होकर देह को आत्मा मानना एवं देहोत्पन्न होने वाली कुरूप-सुरूप, सबल-निर्बल, धनी-निर्धन, मूर्ख-ज्ञानी तथा सुखी-दुःखी आदि अवस्थाओं को आत्मा की अवस्थाएँ मानना जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 4. अजीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – यह पौद्गलिक शरीर पूरण-गलन स्वभाव वाला है और आत्मा अविनाशी है, फिर भी शरीर की उत्पत्ति को आत्मा की उत्पत्ति और शरीर के विनाश को आत्मा का विनाश मानना अजीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 5. आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – रागद्वेष आदि भाव, आस्रव का कारण होने से प्रत्यक्ष में दु:ख देने वाले हैं, स्वयं दु:ख स्वरूप हैं, बंध के कारण हैं, अध्रुव हैं, अनित्य हैं एवं अशरण हैं किन्तु इन्हें सुखदायी समझना अर्थात् आसक्तिपूर्वक रागादि भावों का सेवन करके आस्रव का अभिवादन करना आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 6. पर-पदार्थ आत्मा को दु:ख क्यों देता है ?

उत्तर – केवल पर-पदार्थ आत्मा को कोई दु:ख नहीं देते। कर्मोदय से उत्पन्न पर-पदार्थों के प्रति होने वाली राग-द्वेष और लोभ आदि रूप जीव की विपरीत परिणति ही उसे प्रत्यक्ष दु:ख देने वाली है।

प्रश्न 7. बन्ध तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – आत्मा के ज्ञाता, दृष्टा एवं निर्बन्ध स्वभाव की श्रद्धा न करके पुण्य कर्म के बन्ध के अच्छे फल में अर्थात् धन, वैभव, उत्तम स्त्री-पुत्र आदि के सहयोग में हर्षित होना और उन पदार्थों से प्रेम करना तथा पापकर्म के बन्ध के बुरे फल अर्थात् वैभव आदि के वियोग में दु:खी होना एवं अनिष्ट पदार्थों से द्वेष करना अथवा द्वेष करने योग्य कर्म बन्ध में द्वेष न करके उल्टे उसके फल में द्वेष आदि करना बन्ध तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 8. संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – संसार से उदासीन होकर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करने में राग-द्वेष का त्याग करने में और सम्यग्ज्ञान सहित सम्यक्चारित्र का पालन करने में ही आत्मा का कल्याण है, किन्तु मिथ्यात्व के उदय से इन्हें एवं अन्य भी व्रत, नियम, संयम आदि को अपने लिए दु:खदायी मानता है अर्थात् सुख के कारणभूत संवर को दु:खदायी मानना ही संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 9. निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – रत्नत्रय की वृद्धि हेतु इच्छाओं को रोकना तप है, तप से निर्जरा होती है, किन्तु अज्ञानतावश अपनी आत्मशक्ति का विस्मरण कर पंचेन्द्रियों के विषयों की चाह को नहीं रोकना, निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 10. मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – निराकुलता ही सच्चा सुख या मोक्ष है, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष के उस यथार्थ स्वरूप को नहीं मानता अत: आकुलता, चिंता, शल्य, तृष्णा, संक्लेश, प्रेम, प्रीति एवं स्त्री-प्रेम, पुत्रादि के बिना भी कहीं कोई सुख है, ऐसा वह विश्वास ही नहीं कर पाता। इसके विपरीत मोक्ष को ही अति कठिन और आकुलतामय मानता है। यही मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न 11. ज्ञान का स्वभाव जानना है, वह जानने का कार्य करता ही है फिर उसमें मिथ्यापन कैसे आता है ?

उत्तर – जैसे मधुर दुग्ध कड़वी तूमड़ी में रख देने से कड़वा हो जाता है, उसी प्रकार विपरीत श्रद्धावान जीव का ज्ञान भी विपरीत हो जाता है।

प्रश्न 12. विषयों की प्रवृत्ति को अगृहीत मिथ्याचारित्र क्यों कहा गया है ?

उत्तर – पंचेन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करना जीव का स्वभाव एवं गुण नहीं है, यह प्रवृत्ति तो अगृहीत मिथ्यादर्शन और अगृहीत मिथ्याज्ञान के कारण हो रही है अत: यह प्रवृत्ति अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न 13. अगृहीत मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर – अगृहीत मिथ्यात्व तो बाह्य कारण बिना संस्कार वश स्वयं होता है,किन्तु गृहीत मिथ्यात्व अन्य की सहायता अर्थात् पर उपदेशादि से होता है।

प्रश्न 14. सुगुरु और कुगुरु की क्या पहचान है ?

उत्तर – निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि, आर्यिका एवं ऐलक-क्षुल्लक ये तीनों लिंग जिनशास्त्रों में मान्य हैं, अत: यही सुगुरु हैं, शेष सभी लिंगधारी कुगुरु हैं। विद्यागुरु इन दोनों से भिन्न हैं।

प्रश्न 15. कुगुरु को पत्थर की नाव क्यों कहा गया है ?

उत्तर – जिस प्रकार पत्थर की नाव समुद्र पार नहीं करा सकती क्योंकि वह स्वयं डूबेगी और अपने आश्रितों को भी डूबोएगी, उसी प्रकार कुगुरु संसार समुद्र पार करने में सहायक नहीं बन सकते, वे स्वयं चतुर्गति के दु:ख भोगते हैं और उनका आश्रय ग्रहण करने वाले भी दु:ख भोगेंगे, इसलिए उन्हें पत्थर की नाव कहा गया है।

प्रश्न 16. सुदेव, देव, कुदेव और अदेव की परिभाषाएँ क्या हैं ?

उत्तर – सिद्ध परमात्मा एवं वीतरागी, सर्वज्ञ तथा हितोपदेशी अरिहन्त परमात्मा सुदेव हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये देव हैं। हरि, हर, ब्रह्मा

एवं शीतलादि कुदेव हैं और पीपल, तुलसी, पत्थर आदि कल्पित देव अदेव हैं।

प्रश्न 17. भावहिंसा और द्रव्यहिंसा में क्या अन्तर है ?

उत्तर – आत्मा में रागद्वेष आदि विकारी परिणाम होना भावहिंसा है और त्रस एवं स्थावर जीवों का घात द्रव्यहिंसा है ।

प्रश्न 18. कुधर्म और सुधर्म में क्या अंतर है ?

उत्तर – हिंसापरक क्रियाओं को धर्म मानना कुधर्म और अहिंसापरक क्रियाओं को सुधर्म कहते हैं। यथा–अहिंसा परमोधर्म:।

प्रश्न 19. जीवगृहीत मिथ्यादर्शन कब ग्रहण करता है ?

उत्तर – मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से प्रेरित जीव कुगुरु आदि के उपदेश से मिथ्यादर्शन को ग्रहण कर लेते हैं।

प्रश्न 20. अनेकान्त और एकान्तवाद किसे कहते हैं ?

उत्तर – भिन्न–भिन्न धर्मों की अपेक्षा से एक वस्तु का विरोध रहित अनेक धर्मात्मक कथन करने वाला सिद्धान्त अनेकान्त है और अनेक धर्मों की सत्ता की अपेक्षा न करके वस्तु का एक ही रूप से कथन करना एकान्तवाद है।

प्रश्न 21. पंचेन्द्रियों के विषय कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर – स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द के भेद से इन्द्रिय विषय पाँच प्रकार के हैं।

प्रश्न 22. ज्ञानहीन क्रिया को मिथ्याचारित्र क्यों कहा है ?

उत्तर – जैसे तिल और बालू रेत के लक्षण को न जानने वाले के द्वारा तेल के लिए बालू रेत पेलने की क्रिया मिथ्या है वैसे ही जीव और शरीर के भेद को जाने बिना शरीर को क्षीण करने वाली अनेक प्रकार की जो जो क्रियाएं हैं, वे सब मिथ्या चारित्र ही हैं।

प्रश्न 23. आत्मोद्धार में बाधक कारण क्या है ?

उत्तर – आत्मोद्धार में सबसे प्रबल बाधक कारण है आत्मस्वरूप का विपरीत श्रद्धान कर शरीर को ही आत्मा मानना। इसके अतिरिक्त असल–नकल की अनभिज्ञता, अच्छे को बुरा, बुरे को अच्छा, सुख को दु:ख, दु:ख को सुख और हित को अहित, अहित को हित मानना, इन्हीं बाधक कारणों को अपनाने वाला जीव अपने ही हाथ से अपने ही जीवन पर कुठाराघात कर अनन्त संसार में भ्रमण करता हुआ भयंकर दु:ख भोग रहा है।

तीसरी ढाल

भूमिका

आत्मा का हित सुख है, वह सुख निराकुलता में है और वह निराकुलता मोक्ष में है, इसलिए तृतीय ढाल में मोक्षमार्ग का सांगोपांग विवेचन किया गया है। मोक्ष प्राप्ति का उपाय रत्नत्रय है और वह निश्चय एवं व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रय का कारण है।

मोक्षमार्ग में प्रवर्तन कराने वाले सम्यक्त्व के विषयभूत सातों तत्त्वों का कथन, अजीव तत्त्व के अन्तर्गत षट् द्रव्यों के लक्षण, आठ अंग, आठ मद और छह अनायतनों के लक्षण तथा सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण जिनेन्द्र देव, परिग्रह बिन गुरु और दयायुत धर्म आदि को कहकर उसका प्रयोजन समझाया गया है कि बिना जाने दोषों का त्याग और गुणों का ग्रहण कैसे हो सकता है। अन्त में मनुष्य पर्या को सफल बनाने हेतु सम्यक्त्व धारण करने की विशेष प्रेरणा दी गई है।

सच्चा सुख और द्विविध मोक्ष मार्ग

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिव–मग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन – ज्ञान –चरन शिवमग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो॥1॥

अन्वयार्थ– (आतम को) आत्मा का **(हित)** भलाई **(सुख)** सुख का मिलना **(है)** है **(सो)** वह सुख **(आकुलता बिन)** आकुलता रहित **(कहिये)** कहना चाहिए और वह **(आकुलता)** आकुलता **(शिवमाहिं)** मोक्ष में **(न)** नहीं है **(तातैं)** इसलिए **(शिवमग)** मोक्षमार्ग में **(लाग्यो)** लगना **(चहिये)** चाहिए **(सम्यग्दर्शनज्ञानचरन)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता **(शिवमग)** मोक्षमार्ग है **(सो)** वह मोक्षमार्ग **(दुविध)** दो प्रकार का **(विचारो)** कहा गया है। **(जो)** जो **(सत्यारथ रूप)** वास्तविक स्वरूप है **(सो)** वह **(निश्चय)** निश्चय मोक्षमार्ग है और जो **(कारण)** निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है **(सो)** वह **(व्यवहारो)** व्यवहार मोक्ष मार्ग है।

अर्थ – आत्मा का हित या भलाई सुख पाने में है और वह सुख आकुलता या दु:ख से रहित है। आकुलता मोक्ष में नहीं है इसलिए मोक्ष के मार्ग को अंगीकार करना चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एकता रूप मोक्षमार्ग के स्वरूप का दो तरह से विचार करना चाहिए। जो वास्तविक या अंतरंग स्वरूप है वह

निश्चय मोक्षमार्ग कहलाता है और जो निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति में कारणभूत है वह व्यवहार-मोक्षमार्ग कहलाता है ।

निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है ।
आपरूप को जानपनो, सो सम्यग्ज्ञान कला है ॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई ।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥2॥

अन्वयार्थ- (आप में) आत्मा में **(परद्रव्यनतैं)** पर वस्तुओं से **(भिन्न)** अलग **(रुचि)** श्रद्धान करना **(भला)** निश्चय **(सम्यक्त्व)** सम्यग्दर्शन **(है)** है **(आपरूप को)** आत्मा के स्वरूप का **(परद्रव्यनतैं)** पर वस्तुओं से **(भिन्न)** अलग **(जानपनो)** जानना **(सम्यग्ज्ञान)** निश्चय सम्यग्ज्ञान **(कला)** गुण-प्रकाश **(है)** है **(परद्रव्यनतैं)** परवस्तुओं से भिन्न-जुदा होकर **(आपरूप में)** आत्मस्वरूप में **(थिर)** स्थिरता पूर्वक **(लीन रहे)** लीन होना **(सम्यक्चारित्र)** निश्चय सम्यक् चारित्र **(सोई)** है **(अब)** अब **(व्यवहार)** व्यवहार **(मोक्षमग)** मोक्षमार्ग **(सुनिये)** सुनो जो व्यवहार मोक्षमार्ग **(नियत)** निश्चय मोक्षमार्ग का **(हेतु)** कारण **(होई)** होता है।

अर्थ - दूसरे द्रव्यों से अपनी आत्मा को भिन्न जानकर अपनी आत्मा का श्रद्धान करना निश्चय-सम्यग्दर्शन है। अपने आत्मा के स्वरूप को जानना सम्यग्ज्ञान है। अपने आत्मा के स्वरूप में एकचित्त होकर लीन रहना ही सम्यक्चारित्र है । अब व्यवहार-मोक्षमार्ग का वर्णन करते है सो उसे सुनिये क्योंकि वह निश्चय-मोक्षमार्ग के होने में सहायक कारण है।

व्यवहार रत्नत्रय का स्वरूप

जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्धरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों को त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दिढ़ प्रतीति उर आनो॥3॥

अन्वयार्थ-(जिन) जिनेन्द्र देव ने **(जीव)** जीव **(अजीव)** अजीव **(आस्रव)** आस्रव **(बंध)** बंध **(संवर)** संवर **(निर्जर)** निर्जरा **(अरु)** और **(मोक्ष)** मोक्ष **(तत्त्व)** ये सात तत्त्व **(ज्यों)** जैसे **(कहे)** कहे हैं **(तिनको)** उनको **(ज्यों का त्यों)** जैसा का तैसा **(सरधानो)** श्रद्धान करना **(व्यवहारी)** व्यवहार **(समकित)** सम्यग्दर्शन **(है)** है **(अब)** अब **(इन)** इन सात तत्त्वों का **(रूप)** स्वरूप **(बखानो)** कहता हूँ **(तिनको)** उन सात तत्त्वों को **(सामान्य)** सामान्यरूप से और **(विशेषैं)** विशेषरूप से **(सुन)** सुनकर **(उर)** मन में **(दिढ़)** अटल **(प्रतीति)** विश्वास **(आनो)** करना चाहिए।

अर्थ-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का स्वरूप जैसा श्री जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है वैसा ही मानना या श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सात-तत्त्वों का सामान्य और विशेष स्वरूप आगे कह रहे हैं, उसे सुनकर, समझकर, दृढ़ता से हृदय में धारण कर लेना चाहिए।

जीव के भेद : बहिरात्मा और उत्तम अन्तरात्मा

बहिरातम, अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है ।
देह जीव को एक गिनै बहिरातम-तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर-आतम-ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥4॥

अन्वयार्थ- (बहिरातम) बहिरात्मा **(अन्तर आतम)** अन्तरात्मा **(परमात्मा)** परमात्मा इस प्रकार **(जीव)** जीव **(त्रिधा)** तीन प्रकार के **(है)** हैं उनमें, जो **(देह जीव को)** शरीर और आत्मा को **(एक गिनै)** एक मानता है वह **(बहिरातम)** बहिरात्मा है, [और वह बहिरात्मा] **(तत्त्व मुधा)** वास्तविक तत्त्वों का अजानकार या मिथ्यादृष्टि है **(आतमज्ञानी)** आत्मा को पर वस्तुओं से जुदा करने वाला, **(अन्तर आतम)** अन्तरात्मा कहलाता है, वह **(उत्तम)** उत्तम **(मध्यम)** मध्यम और **(जघन)** जघन्य के भेद से **(त्रिविध के)** तीन प्रकार का है, उनमें **(द्विविध)** अन्तरंग और बहिरंग **(संग बिन)** परिग्रह रहित **(शुध उपयोगी)** शुद्धोपयोगी **(निजध्यानी)** आत्मध्यानी **(मुनि)** दिगम्बर मुनि **(उत्तम)** उत्तम अन्तरात्मा हैं।

अर्थ - जीव या आत्म-तत्त्व का विचार करते हैं। जीव तीन प्रकार के होते हैं-बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो शरीर और आत्मा को एक ही मानते हैं वे तत्त्वों को नहीं जानने वाले अज्ञानी, बहिरात्मा या मिथ्यादृष्टि जीव हैं। जो आत्मा के स्वरूप को जानते हैं वे आत्मज्ञानी, अन्तरात्मा या सम्यग्दृष्टि जीव हैं। अन्तरात्मा भी तीन प्रकार के होते हैं-उत्तम, मध्यम और जघन्य। जो समस्त अंतरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित शुद्धोपयोगी आत्मध्यानी मुनिराज हैं, वे उत्तम-अन्तरात्मा हैं।

मध्यम, जघन्य अन्तरात्मा तथा सकल परमात्मा का स्वरूप

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी॥
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।

श्री अरिहन्त सकल परमातम, लोकालोक-निहारी ॥5॥

अन्वयार्थ- (अनगारी) गृह आदि परिग्रह रहित छट्टे गुणस्थानवर्ती दिगम्बर मुनि और **(देशव्रती)** बारह व्रतों को धारण करने वाले श्रावक **(मध्यम)** मध्यम **(अन्तर आतम)** अन्तरात्मा **(हैं)** हैं और **(अविरत)** बारह व्रत रहित **(समदृष्टि)** सम्यग्दृष्टि जीव **(जघन)** जघन्य अन्तरात्मा **(कहे)** कहे गये हैं **(तीनों)** ये तीनों अन्तरात्मा **(शिवमगचारी)** मोक्षमार्ग पर चलने वाले हैं। **(सकल निकल)** सकल और निकल के भेद से **(परमातम)** परमात्मा **(द्वैविध)** दो प्रकार के हैं **(तिनमें)** उनमें **(घाति)** चार घातिया कर्मों के **(निवारी)** नाश करने वाले **(लोकालोक)** लोक और अलोक के **(निहारी)** जानने देखने वाले **(श्री अरिहंत)** अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी सहित अरिहंत परमेष्ठी **(सकल)** सकल **(परमातम)** परमात्मा हैं।

अर्थ - मध्यम अन्तरात्मा वे हैं जो मुनि अथवा देशव्रती गृहस्थ या श्रावक हैं। जघन्य अन्तरात्मा वे हैं जो व्रत रहित होते हुये भी सम्यग्दृष्टि हैं । ये तीनों प्रकार के अन्तरात्मा मोक्षमार्ग पर चलने वाले हैं। परमात्मा के दो रूप हैं, सकल परमात्मा और निकल परमात्मा। श्री अरिहन्त भगवान् सकल परमात्मा हैं उन्होंने घातिया-कर्मों का नाश कर दिया है और वे लोक और अलोक को जानते हैं अर्थात् केवलज्ञानी हैं।

निकल परमात्मा का स्वरूप और उसके ध्यान का उपदेश

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित, सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै॥6॥

अन्वयार्थ- (ज्ञान शरीरी) ज्ञान ही है शरीर जिनका ऐसे **(त्रिविध कर्म)** तीन प्रकार के ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्म रूप **(मल)** मैल से **(वर्जित)** रहित **(अमल)** निर्मल **(महंत)** पूज्य **(सिद्ध)** सिद्ध परमेष्ठी **(निकल)** निकल **(परमातम)** परमात्मा हैं, वे **(अनन्ता)** अनन्त अर्थात् अपरिमित **(शर्म)** सुख को **(भोगैं)** भोगते हैं। इन तीनों में **(बहिरातमता)** बहिरात्मापन को **(हेय)** छोड़ने योग्य **(जानि)** जानकर **(तजि)** छोड़कर **(अन्तर आतम)** अन्तरात्मा **(हूजै)** होना चाहिए और **(निरन्तर)** सदा **(परमातम को)** परमात्मा का **(ध्यान)** ध्यान करना चाहिए **(जो)** परमात्मा का ध्यान **(नित)** नित्य अर्थात् अनन्त **(आनंद)** सुख **(पूजै)** प्राप्त कराता है।

अर्थ - सिद्ध भगवान् शरीर से रहित होने से निकल परमात्मा हैं। उनका ज्ञान ही शरीर है, वे तीनों प्रकार के कर्म-मल अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित हैं, निर्मल हैं, महान् हैं और अनन्त काल तक आत्मसुख में लीन रहते हैं। इस तरह

बहिरात्मपना छोड़ने योग्य है, ऐसा जानकर उसे छोड़ देना चाहिए तथा अन्तरात्मा होकर सदा परमात्मा का ध्यान करना चाहिए, जिससे जीवन में आनन्द की प्राप्ति हो ।

अजीव तत्त्व : पुद्गल, धर्म और अधर्म द्रव्य का लक्षण

चेतनता बिन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसु जाके हैं॥
जिय-पुद्गलको चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी॥7॥

अन्वयार्थ-जो **(चेतनता बिन)** चेतना रहित है **(सो)** वह **(अजीव)** अजीव है **(ताके)** उस अजीव के **(पंच)** पाँच **(भेद)** भेद **(हैं)** हैं **(जाके)** जिसके **(पंच)** पाँच-पाँच **(वरन रस)** वर्ण और रस **(दो)** दो **(गंध)** गंध और **(वसु)** आठ **(फरस)** स्पर्श **(हैं)** होते हैं वह **(पुद्गल)** पुद्गल द्रव्य है, जो **(जिय)** जीव को और **(पुद्गल को)** पुद्गल को **(चलन सहाई)** चलने में सहकारी और **(अनुरूपी)** अमूर्तिक है, वह **(धर्म)** धर्मद्रव्य है, जो **(तिष्ठत)** ठहरते हुये जीव और पुद्गल को **(सहाई)** सहकारी **(होय)** होता है वह **(अधर्म)** अधर्म द्रव्य है **(जिन)** भगवान् जिनेन्द्र ने वह अधर्म द्रव्य **(बिनमूर्ति)** अमूर्तिक **(निरूपी)** कहा है।

अर्थ - अजीव तत्त्व वह है जो चेतना से रहित हैं। इसके पाँच भेद हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमें वर्ण, रस, गंध और स्पर्श हो, उसे पुद्गल-द्रव्य कहते हैं। धर्म-द्रव्य अमूर्तिक है, वह जीव और पुद्गल को चलने में सहायक होता है। अधर्म-द्रव्य भी अमूर्तिक या अरूपी है, वह जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है।

आकाश, काल और आस्रव का स्वरूप और भेद

सकल-द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहार काल परिमानो॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥8॥

अन्वयार्थ-(जास में) जिसमें **(सकल)** सब **(द्रव्य को)** द्रव्यों का **(वास)** निवास है **(सो)** वह **(आकाश)** आकाश द्रव्य **(पिछानो)** जानना चाहिए। **(वर्तना)** स्वयं पलटने और दूसरों को पलटाने वाला **(नियत)** निश्चय तथा **(निशिदिन)** रात्रि-दिन आदिक **(व्यवहार)** व्यवहार **(काल)** कालद्रव्य **(परिमानो)** जानना चाहिए **(यों)** इस प्रकार **(अजीव)** अजीव तत्त्व का वर्णन हुआ। **(अब)** अब

(आस्रव) आस्रव तत्त्व **(सुनिये)** सुनो **(मनवचकाय)** मन, वचन और काय **(त्रियोगा)** इन तीनों की हलन चलन क्रिया तथा **(मिथ्या)** मिथ्यात्व **(अविरत)** अविरति **(कषाय)** कषाय **(अरु)** और **(परमाद)** प्रमाद **(सहित)** सहित **(उपयोगा)** आत्मा की प्रवृत्ति **(आस्रव)** आस्रव तत्त्व कहलाता है।

अर्थ-आकाश द्रव्य वह है जिसमें सब द्रव्यों का निवास है । काल द्रव्य दो प्रकार का है, निश्चय काल और व्यवहार काल। जो सब द्रव्यों के परिणमन या परिवर्तन में सहायक है, वह निश्चयकाल है। उसे कहा नहीं जा सकता। जो रात-दिन, घड़ी, घंटा, मिनिट आदि रूप में जाना या कहा जाता है, वह व्यवहार काल है। इस तरह अजीव तत्त्व का वर्णन हुआ । अब आस्रव तत्त्व का वर्णन सुनिये। मन-वचन-काय रूप तीन योग, मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और प्रमाद से युक्त आत्मा की प्रवृत्ति को आस्रव कहते हैं।

आस्रव के त्याग का उपदेश और बंध, संवर और निर्जरा तत्त्व का लक्षण

ये ही आतम को दुख-कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव-प्रदेश बँधै विधिसों सो, बन्धन कबहुँ न सजिये॥
शम-दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बलतैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये॥9॥

अन्वयार्थ- (ये ही) ये मिथ्यात्व आदि ही **(आतम को)** आत्मा के **(दुखकारण)** दु:ख के कारण हैं **(तातैं)** इसलिए **(इनको)** इन मिथ्यात्व आदि को **(तजिये)** छोड़ देना चाहिए। **(जीव प्रदेश)** आत्मा के प्रदेशों का **(विधिसों)** कर्मों से **(बँधै)** बँधना **(बंधन)** बंध कहलाता है **(सो)** वह बंध **(कबहुँ)** कभी भी **(न सजिये)** नहीं करना चाहिए। **(शम)** कषायों का उपशम और **(दम)** इन्द्रिय और मन की विजय **(तैं)** से **(कर्म)** कर्म **(न आवैं)** नहीं आना **(संवर)** संवर तत्त्व है **(ताहि)** उस संवर को **(आदरिये)** ग्रहण करना चाहिए। **(तपबलतैं)** तप की शक्ति से **(विधि)** कर्मों का **(झरन)** एकदेश झड़ जाना **(निरजरा)** निर्जरा कहलाती है **(ताहि)** उस निर्जरा को **(सदा)** हमेशा **(आचरिये)** प्राप्त करना चाहिए।

अर्थ - ये मिथ्यादर्शन आदि भाव आत्मा के लिये दु:ख के कारण हैं इसलिएइनको छोड़ देना चाहिए। इन्हीं भावों के कारण जीव या आत्मा के प्रदेश कर्मों से बंध जाते हैं सो ऐसा बंधन कभी नहीं करना चाहिए । यह बंध-तत्त्व कहलाता है। कषायों के शमन से और इन्द्रिय व मन पर नियंत्रण रखने से कर्मों का आना रुक जाता है, इसे संवर तत्त्व कहते हैं। इस संवर तत्त्व को अपनाना चाहिए। तपस्या के बल से कर्मों का क्रमश: झड़ना अर्थात् नष्ट होना निर्जरा कहलाती है। इस निर्जरा तत्त्व का सदा आचरण करना चाहिए अर्थात् इसे प्राप्त करना चाहिए।

मोक्ष तत्त्व का लक्षण और व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप

सकल-कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव, थिर सुखकारी।
इहिविधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट अंग-जुत धारो॥10॥

अन्वयार्थ- (सकलकर्मतैं) समस्त कर्मों से **(रहित)** रहित **(थिर)** स्थिर-अटल और **(सुखकारी)** अनंत सुखदायक **(अवस्था)** पर्याय **(शिव)** मोक्ष कहलाता है। **(इहिविधि)** इस प्रकार **(जो)** जो **(तत्त्वन की)** सातों तत्त्वों का **(सरधा)** अटल श्रद्धान करना है, वह **(व्यवहारी)** व्यवहार **(समकित)** सम्यग्दर्शन है **(जिनेन्द्र)** वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी **(देव)** सच्चे देव, **(परिग्रह बिन)** परिग्रह रहित **(गुरु)** वीतराग गुरु तथा **(सारो)** सारभूत **(दयाजुत)** अहिंसामय **(धर्म)** जैनधर्म **(येहु)** इन सब को **(समकित को)** सम्यग्दर्शन का **(कारण)** कारण **(मान)** जानना चाहिए। उस सम्यग्दर्शन को **(अष्ट)** आठ **(अंगजुत)** अंगों सहित **(धारो)** धारण करना चाहिए।

अर्थ -समस्त कर्मों से रहित अवस्था को मोक्ष कहते हैं। यह अवस्था स्थायी सुख देने वाली है। यह मोक्ष तत्त्व का वर्णन हुआ। इस प्रकार सात तत्त्वों पर श्रद्धा करना व्यवहार-सम्यग्दर्शन है। वीतरागी देव श्री जिनेन्द्र भगवान्, सभी परिग्रहों से रहित वीतरागी गुरु और दयामय वीतराग धर्म-ये तीनों सम्यग्दर्शन के होने में कारण हैं। सम्यग्दर्शन को आठ-अंग सहित धारण करना चाहिए ।

सम्यक्त्व के 25 दोष 8 गुण

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहुँ कहिये।
बिन जानेतैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये॥11॥

अन्वयार्थ-(वसु) आठ **(मद)** मदों को **(टारि)** छोड़कर **(त्रिशठता)** तीन मूढ़ताओं को **(निवारि)** हटाकर **(षट्)** छ: **(अनायतन)** अनायतनों को **(त्यागो)** त्यागना चाहिए। और **(शंकादिक)** शंका आदि **(वसु)** आठ **(दोष)** दोषों को **(बिना)** छोड़कर **(संवेगादिक)** संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और प्रशम में **(चित)** मन को **(पागो)** लगाना चाहिए। अब **(अष्टअंग)** आठों अंग **(अरु)** और **(पचीसों)** पच्चीसों **(दोष)** दोष **(संक्षेपहुँ)** संक्षेप में **(कहिये)** कहे जाते हैं। क्योंकि **(बिन जानेतैं)** जाने बिना **(दोष)** दोषों को **(कैसे)** कैसे **(तजिये)** छोड़ा

जा सकता है और **(गुणन को)** गुणों को **(कैसे)** कैसे **(गहिये)** ग्रहण किया जा सकता है।

अर्थ - आठ-मद, तीन मूढ़ता, छह-अनायतन और शंका आदि आठ दोष ये पच्चीस दोष सम्यग्दर्शन के हैं । इनको दूर करके प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि गुणों को हृदय में धारण करना चाहिए। अब सम्यग्दर्शन के आठ-अंग और पच्चीस दोषों को संक्षेप में कहा जा रहा है क्योंकि दोष और गुण जाने बिना कैसे कोई दोषों को त्याग करे और गुणों को ग्रहण करे।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग का स्वरूप

जिनवचमें शंका न, धार वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज-गुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निज-धर्म-बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-परको सु दिढ़ावै॥12॥
धर्मी सों गौवच्छ - प्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै॥

अन्वयार्थ-(जिनवचमें) सर्वज्ञदेव के द्वारा कथित तत्त्वों में **(शंका)** संदेह **(न धार)** नहीं करना नि:शंकित अंग है। **(वृष)** धर्म को **(धार)** धारण कर **(भवसुखवांछा)** संसार के सुखों की चाह **(भानै)** नहीं करना नि:कांक्षित अंग है। **(मुनितन)** मुनिराज आदि के शरीर को **(मलिन)** मैला **(देख)** देखकर **(न घिनावै)** घृणा नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है। **(तत्त्व कुतत्त्व)** साँचे झूठे तत्त्वों की **(पिछानै)** पहचान करना अमूढ़दृष्टि अंग है। **(निजगुण)** अपने गुणों को **(अरु)** और **(पर औगुण)** दूसरे के दोषों को **(ढाँके)** छिपाना **(वा)** और **(निजधर्म)** अपने आत्मधर्म को **(बढ़ावै)** बढ़ाना या निर्मल बनाना उपगूहन अंग है। **(कामादिक कर)** कामविकार आदि कारणों से **(वृषतैं)** धर्म से **(चिगते)** डिगते हुये **(निज पर को)** अपने को और दूसरों को **(सु दिढ़ावै)** फिर से उसी में दृढ़ कर देना स्थितिकरण अंग है। **(धर्मी सों)** अपने सहधर्मी जनों से **(गौवच्छ प्रीतिसम)** बछड़े पर गाय के प्रेम के समान **(कर)** स्नेह करना वात्सल्य अंग है। तथा **(जिनधर्म)** जैनधर्म को **(दिपावै)** प्रकाशित करना प्रभावना अंग है। **(इन गुणतैं)** इन आठ गुणों-अंगों से **(विपरीत)** उलटे **(वसु)** आठ **(दोष)** दोष हैं **(तिनकों)** उन्हें **(सतत)** हमेशा **(खिपावै)** दूर करना चाहिए।

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये वचनों में संदेह नहीं करना नि:शंकित अंग है। धर्म को धारण करके उसके द्वारा भौतिक-सुख की इच्छा नहीं करना नि:कांक्षित अंग है। मुनिजनों के मलिन शरीर को देखकर घृणा नहीं करना

निर्विचिकित्सा अंग है। सच्चे और झूठे तत्त्व की ठीक-ठीक पहचान करना अमूढ़-दृष्टि-अंग है। अपने गुण और दूसरे के दोष ढ़क लेना या अपने वीतराग-धर्म को निर्मल बनाना उपगूहन अंग है । काम, क्रोध आदि किसी कारणवश वीतराग-धर्म से विचलित होने पर स्वयं को और दूसरे को भी पुन: धर्म में स्थिर करना स्थितिकरण-अंग है। गाय अपने बछड़े से जिस प्रकार निश्छल प्रेम रखती है, उसी प्रकार अपने साधर्मी बंधुओं से प्रेम-भाव रखना वात्सल्य-अंग है । जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये अहिंसा-धर्म का प्रचार करना प्रभावना अंग है। इन आठ गुणों या अंगों से विपरीत आठ दोष हैं। जिनसे सदा बचना चाहिए।

आठ मद

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै॥13॥
तपको मद, न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को मल ठानै॥

अन्वयार्थ-जो जीव **(जो)** यदि **(पिता)** पिता आदि पितृपक्ष के जन **(भूप)** राजा आदि **(होय)** होवें तो **(मद)** अभिमान **(न ठानै)** नहीं करता है। यदि **(मातुल)** मामा आदि मातृपक्ष के व्यक्ति **(नृप)** राजा आदि **(होय)** होवें, तो **(मद)** घमण्ड **(न ठानै)** नहीं करता है। **(रूप को)** शरीर का **(मद)** अभिमान **(न)** नहीं करता है। **(ज्ञान को)** विद्या का **(मद न)** घमण्ड नहीं करता है। **(धन को)** रुपया पैसा का **(मद भानै)** अभिमान नहीं करता है। **(बल को)** ताकत का **(मद भानै)** घमण्ड नहीं करता है। **(तप को)** तप का **(मद न)** अभिमान नहीं करता है। **(जु)** और **(प्रभुता को)** ऐश्वर्य-बड़प्पन का **(मद न करे)** घमण्ड नहीं करता है। **(सो)** वह **(निज)** अपनी आत्मा को **(जानै)** पहचानता है। यदि प्राणी इनका **(मद)** अभिमान **(धारै)** करता है **(तौ)** तो **(यही)** ये उक्त मद ही **(वसु)** आठ **(दोष)** दोष होकर **(समकित को)** सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन में **(मल)** दोष **(ठानै)** करते हैं।

अर्थ - अब आठ-मद बताये जा रहे हैं। अपने पिता राजा हों तो उसका घमंड नहीं करना। अपने मामा राजा हों तो उसका घमंड नहीं करना अर्थात् जाति मद नहीं करना। अपने सुंदर रूप का, अपने ज्ञान का, अपनी धन-सम्पत्ति का, अपनी शक्ति या बल का घमंड नहीं करना। अपनी तपस्या का और अपनी पद-प्रतिष्ठा का भी घमंड नहीं करना। जो घमंड नहीं करता वही अपने आत्मा के स्वरूप को समझ सकता है। यदि कोई घमंड करता है तो यही आठ मद सम्बन्धी दोष उसके सम्यग्दर्शन को मलिन कर देते हैं ।

छह अनायतन और तीन मूढ़ता

कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहीं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक तिन्हें न नमन करै हैं ॥14॥

अन्वयार्थ-सम्यग्दृष्टि जीव **(कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की)** कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव सेवक और कुधर्म सेवक की **(प्रशंस)** प्रशंसा **(नहीं उचरै है)** नहीं करता है। **(जिन)** जिनेन्द्रदेव **(मुनि)** वीतराग मुनि और **(जिनश्रुत)** जिनवाणी को **(बिन)** छोड़कर जो **(कुगुरादिक)** कुगुरु, कुदेव, कुधर्म हैं **(तिन्हें)** उन्हें **(नमन)** नमस्कार **(न करै है)** नहीं करता है।

अर्थ -अब छह अनायतन बताये जा रहे हैं। खोटे-गुरु, खोटे-देव, खोटा-धर्म और इन तीनों के सेवक या भक्त-ये छह अनायतन कहलाते हैं। इनकी मन वचन काय से प्रशंसा नहीं करना। यदि प्रशंसा करते हैं तो यही छह अनायतन सम्बन्धी दोष सम्यग्दर्शन को मलिन कर देते हैं। जिनेन्द्र भगवान्, निर्ग्रंथ मुनि और जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहे गये शास्त्रों के सिवाय अन्य किसी कुदेव, कुगुरु या कुशास्त्र को नमस्कार नहीं करना। यदि नमस्कार करते हैं तो यही तीन मूढ़ता नामक दोष सम्यग्दर्शन को मलिन कर देते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि की श्रेष्ठता एवं उदासीनता

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥15॥

अन्वयार्थ- **(जे)** जो **(सुधी)** बुद्धिमान् पुरुष पूर्वोक्त **(दोषरहित)** पच्चीस दोष रहित और **(गुण सहित)** निःशंकित आदि आठ गुणों सहित **(सम्यक् दरश)** सम्यग्दर्शन से **(सजै हैं)** भूषित हैं। उनके **(चरित-मोहवश)** अप्रत्याख्यानावरण चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से **(लेश)** थोड़ा भी **(संजम)** संयम **(न)** नहीं होता है। **(पै)** तो भी **(सुरनाथ)** देवों के स्वामी इन्द्र उनकी **(जजै हैं)** पूजा करते हैं। वे यद्यपि **(गेही)** गृहस्थ हैं **(पै)** तो भी **(गृह में)** घर में **(न रचै)** आसक्त नहीं होते **(ज्यों)** जैसे **(कमल)** कमल **(जलतैं)** पानी से **(भिन्न)** अलग रहता है। **(यथा)** जैसे **(कादे में)** कीचड़ में भी **(हेम)** सुवर्ण **(अमल)** शुद्ध रहता है। उनका घर में **(नगरनारि को)** वेश्या के **(प्यार यथा)** प्रेम के समान **(प्यार)** प्रेम होता है।

अर्थ - पच्चीस दोषों से रहित और आठ गुणों से युक्त ऐसे सम्यग्दर्शन से जो बुद्धिमान् जीव शोभित होते हैं वे यद्यपि चारित्र मोहनीय कर्म के तीव्र उदय से थोड़ा सा भी संयम (व्रत, नियम) नहीं ले पाते तो भी इन्द्र के द्वारा सम्मान पाते हैं। यद्यपि

वे गृहस्थ हैं तो भी घर-गृहस्थी में आसक्त नहीं होते।

जैसे कमल जल में रहते हुये भी उससे भिन्न है या जैसे नगरवधु (वेश्या) का प्रेम अस्थिर है या जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ होने पर भी स्वर्ण निर्मल बना रहता है, ऐसे ही वह सम्यग्दृष्टि घर-गृहस्थी के बीच अनासक्त-भाव से रहता है।

सम्यग्दर्शन की महिमा और सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत समकितधारी॥
तीन लोक तिहुँ कालमाहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुखकारी॥16॥

अन्वयार्थ- **(समकितधारी)** सम्यग्दृष्टि जीव **(प्रथम नरक बिन)** प्रथम नरक को छोड़कर **(षट्भू)** शेष छह नरकों में **(ज्योतिष)** ज्योतिषी देवों में **(वान)** व्यन्तरों में **(भवन)** भवनवासी देवों में **(षंड)** नपुंसकों में **(नारी)** स्त्रियों में **(थावर)** पंच स्थावरों में **(विकलत्रय)** द्वीन्द्रिय, त्रीन्दिय, और चतुरिन्द्रिय जीवों में तथा **(पशु में)** कर्मभूमि के पशुओं में **(नहिं उपजत)** पैदा नहीं होता। **(तीन लोक)** तीनों लोकों में तथा **(तिहुँ कालमाहिं)** तीनों कालों में **(दर्शन सो)** सम्यग्दर्शन के समान **(सुखकारी)** सुखदायक **(नहिं)** अन्य नहीं है। **(यही)** यह सम्यग्दर्शन ही **(सकलधर्म को)** सब धर्मों की **(मूल)** जड़ है। **(इस बिन)** इस सम्यग्दर्शन के बिना **(करनी)** समस्त क्रियायें **(दुखकारी)** दुःखदायक हैं।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव पहले नरक को छोड़कर शेष छह नरकों में ज्योतिषी देवों में, व्यन्तर देवों में, भवनवासी देवों में, नपुंसकों में, स्त्री पर्याय में, स्थावर जीवों में, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवों में तथा पशु पर्याय में जन्म धारण नहीं करता। तीन लोक में और तीनों काल में सम्यग्दर्शन के समान अन्य कोई भी सुख देने वाला नहीं है। सब धर्मों का मूल यही सम्यग्दर्शन है। इसके बिना सब क्रियाएं केवल दुःख देने वाली हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र का मिथ्यापना

मोक्ष-महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यहनरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै।।17॥

अन्वयार्थ- यह सम्यग्दर्शन ही **(मोक्षमहल की)** मोक्षरूपी महल की **(परथम)** प्रथम **(सीढ़ी)** सीढ़ी है **(या बिन)** इस सम्यग्दर्शन के बिना **(ज्ञानचरित्रा)** ज्ञान और चारित्र **(सम्यकता)** सत्यार्थता **(न लहैं)** नहीं पाते। इसलिए **(भव्य)** हे भव्य

जीवों! **(सो)** ऐसा **(पवित्रा)** पवित्र **(दर्शन)** सम्यग्दर्शन **(धारो)** धारण करो। **(सयाने)** हे समझदार **(दौल)** दौलतराम! **(सुन)** सुन **(समझ)** जान **(चेत)** होशियार हो **(काल)** अपना समय **(वृथा)** वे मतलब **(मत खोवै)** मत गंवा। क्योंकि **(जो)** यदि (**सम्यक**) सम्यग्दर्शन **(नहिं होवे)** नहीं हुआ तो **(यह)** यह **(नरभव)** मनुष्य पर्याय **(फिर)** फिर **(मिलन)** मिलना **(कठिन है)** कठिन है।

अर्थ – सम्यग्दर्शन ही मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र में समीचीनता नहीं आती। इसलिएहे भव्य जीव ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। दौलतराम जी अपने को सम्बोधित करते हुये कह रहे है कि हे दौलतराम! तुम समझो, सुनो और सचेत हो। तुम समझदार हो इसलिए व्यर्थ समय न गंवाओ। यदि इस पर्याय में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ तो यह मनुष्य पर्याय पुन: मिलना बहुत कठिन है ।

शिक्षा

इस तीसरी ढाल के अध्ययन से तीन बातें हमें सीख लेना चाहिए-

1. जीवन में सच्चा सुख निराकुलता में है। जीवन में निराकुलता पाने के लिए सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान और सही आचरण होना आवश्यक है।

2. जीवन के प्रति हमारी दृष्टि निर्मल होना चाहिए। हमें प्रतिक्षण सजग रहकर देखना होगा कि कहाँ हमारा अविवेक, हमारी मिथ्या आकांक्षाएँ या हमारा अहंकार हमारी दृष्टि को मलिन तो नहीं बना रहा है।

3. सम्यग्दर्शन या दृष्टि की निर्मलता अत्यन्त दुर्लभ है। हमें अपने जीवन में इसे प्राप्त करने का अवसर नहीं खोना चाहिए। जिनबिम्ब के दर्शन, सतत शास्त्र-स्वाध्याय और सत्संगति/गुरुसेवा के माध्यम से आत्म-स्वरूप समझकर अपने श्रद्धान को दृढ़ बनाना चाहिए। आत्म-रुचि, आत्मज्ञान और आत्मलीनता प्राप्त हो ऐसी भावना रखना चाहिए।

प्रश्न 1. मोक्षमार्ग कितने प्रकार का है, उनके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर – मोक्षमार्ग दो प्रकार का है, व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग। जो सत्यार्थ रूप है, अर्थात् जिसके सम्पन्न होने पर उत्तर काल में मोक्ष प्राप्त हो ही जाता है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है और जो निश्चय का कारण अर्थात् साधन है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग तो मोक्ष का साक्षात् कारण है और व्यवहार मोक्षमार्ग परम्परागत कारण है।

प्रश्न 2. निश्चय सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का क्या लक्षण है ?

उत्तर – पर द्रव्यों से भिन्न अपनी आत्मा में रूचि, अपनी आत्मा का ही ज्ञान और अपनी आत्मा में ही रमण निश्चय रत्नत्रय का लक्षण है।

प्रश्न 3. व्यवहार सम्यग्दर्शन का क्या लक्षण है ?

उत्तर – हिंसा रहित धर्म, क्षुधादि 18 दोष रहित देव और निर्ग्रन्थ गुरु पर श्रद्धा करना व्यवहार सम्यक्त्व है।

प्रश्न 4. बहिरात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर – पुद्गल परमाणुओं के पिण्ड से निर्मित शरीर को जो चैतन्य स्वरूप आत्मद्रव्य मानते है, वे बहिरात्मा हैं।

प्रश्न 5. अन्तरात्मा का क्या लक्षण है ?

उत्तर – ''अन्तर आतमज्ञानी '' अर्थात् जड़ एवं नाशवान शरीर से चैतन्य स्वरूप अपने आत्मद्रव्य को भिन्न मानने वाली आत्मा को अन्तरात्मा कहते हैं।

प्रश्न 6. शुद्धोपयोगी किसे कहते हैं ?

उत्तर – शुभ-अशुभ रागद्वेष की परिणति से रहित ज्ञान-दर्शन की अवस्था विशेष का नाम शुद्धोपयोग है।

प्रश्न 7. देशव्रती और अनगारी किसे कहते हैं ?

उत्तर – श्रावक के व्रतों के धारी सम्यग्दृष्टि पंचम गुणस्थानवर्ती जीव को देशव्रती और परिग्रह से रहित छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज को अनगारी कहते हैं।

प्रश्न 8. अविरतसम्यग्दृष्टि को जघन्य अन्तरात्मा क्यों कहा गया है ?

उत्तर – चतुर्थगुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि का शरीर के प्रति अहंभाव तो नष्ट हो जाता है किन्तु कषायों की अधिक मंदता न होने से वह व्रत धारण नहीं कर पाता। यही उसकी जघन्यता में कारण है।

प्रश्न 9. परमात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो आत्मा कर्ममल से रहित हैं तथा परमपद में स्थित हैं, वे परमात्मा कहलाते हैं।

प्रश्न 10. घातिया कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो कर्म आत्मा के गुणों को प्रकट न होने दें, उन्हें घातिया कर्म कहते हैं। वे चार हैं-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय।

प्रश्न 11. अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनन्त चतुष्टय को अन्तरंग लक्ष्मी और समवसरणादि को बहिरंग लक्ष्मी कहते हैं।

प्रश्न 12. विविध कर्म कौन-कौन से हैं और उनके क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म ये तीन प्रकार के कर्म हैं। ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों को द्रव्यकर्म, राग-द्वेष, मोहरूप विभाव परिणामों को भावकर्म और शरीर आदि को नोकर्म कहते हैं।

प्रश्न 13. सकल और निकल किसे कहते हैं ?

उत्तर – स=सहित और कल=शरीर अर्थात् शरीर सहित को सकल कहते हैं। न=रहित और कल=शरीर अर्थात् शरीर रहित को निकल कहते हैं।

प्रश्न 14. सच्चा सुख प्राप्त करना आवश्यक क्यों है ?

उत्तर- क्योंकि जैसे ज्ञान जीव की निजी वस्तु है, वैसे ही सच्चा सुख भी जीव का

स्वभाव-सिद्ध वैभव है।

प्रश्न 15. इस सुख की प्राप्ति का क्या उपाय है ?

उत्तर- शरीर में एकत्व बुद्धि का त्याग, भेदविज्ञान की प्रकटता एवं तत्त्व में तल्लीनता ही इस सुख की प्राप्ति का उपाय है।

प्रश्न 16. एक आकाश द्रव्य में अनन्तानन्त जीव एवं पुद्गल कैसे स्थान पा लेते हैं ?

उत्तर- जिस प्रकार किसी बर्तन में पानी भरकर उसमें भस्म (राख) डाली जाय तो वह समा जाती है, फिर उसमें शर्करा डाली जाय तो वह भी समा जाती है फिर उसमें सुइयां डाली जाय तो वे भी समा जाती हैं, उसी प्रकार आकाश में भी अवगाहन शक्ति है, इसलिए उसमें सर्वद्रव्य एक साथ रह सकते हैं।

प्रश्न 17. काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपनी-अपनी पर्यायरूप से स्वयं परिणमित होते हुए जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 18. काल द्रव्य संख्या में कितने हैं ?

उत्तर - काल द्रव्य असंख्यात हैं। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं, उन सब पर एक-एक कालद्रव्य स्थित है। अत: काल द्रव्य भी असंख्यात हैं।

प्रश्न 19. निश्चय काल किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो अपनी निज पर्यायों द्वारा परिणमन करने वाले सम्पूर्ण द्रव्यों के परिणमन में उदासीन कारण है, वह निश्चय काल है।

प्रश्न 20. व्यवहार काल किसे कहते हैं ?

उत्तर - परिणाम, क्रिया, परत्व (बड़ा) और अपरत्व (छोटा) तथा घड़ी, घंटा, दिन, महिना आदि व्यवहार काल है।

प्रश्न 21. अविरति एवं प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर- व्रतों का न होना अथवा पापों में प्रवृत्ति होना अविरति और असावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना या धार्मिक कार्यों में अनुत्साह रखना प्रमाद है।

प्रश्न 22. आत्मा और जीव में क्या भेद है ?

उत्तर - चैतन्य स्वभावी द्रव्य को आत्मा कहते हैं तथा इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन चार प्राणों से जो जीता था, जीता है और जीवेगा, उसे जीव कहते हैं। वस्तुत: ये एक ही हैं। इनमें नामभेद है, द्रव्यभेद नहीं।

प्रश्न 23. जीव के प्रदेश कितने हैं ?

उत्तर- जीव के लोकाकाशप्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं।

प्रश्न 24. तप किसे कहते हैं ?

उत्तर- रत्नत्रय की वृद्धि हेतु इच्छाओं का निरोध करना तप है।

प्रश्न 25. किस स्थान का नाम मोक्ष है ?

उत्तर- किसी स्थान विशेष का नाम मोक्ष नहीं है, अपितु बन्धनमुक्त होने का नाम मोक्ष

है। अर्थात् कर्म बन्ध से रहित जीव की अवस्था विशेष मोक्ष है।

प्रश्न 26. सम्यग्दर्शन के कारणों का प्रतिपादन क्यों किया गया ?

उत्तर- क्योंकि कारण बिना कार्य की निष्पत्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन होने में अर्हन्त देव, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह से रहित गुरु और श्रेष्ठ अहिंसामयी जैनधर्म ही कारण है।

प्रश्न 27. अनायतन शब्द का क्या भाव है ?

उत्तर - अन आयतन =अर्थात् जो धर्म का स्थान नहीं है।

प्रश्न 28. अनायतनों और मूढ़ताओं में क्या अन्तर है ?

उत्तर - अनायतनों में तो कुदेव आदि से दूर रहने को कहा गया है किन्तु मूढ़ताओं में उनकी सेवा, पूजा एवं विनय की जाती है।

प्रश्न 29. प्रशम, संवेग, अनुकम्पा एवं आस्तिक्य के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर - कषायों की मन्दता होना प्रशम, संसार से भीरूता होना संवेग, सभी दु:खी प्राणियों पर दया भावना होना अनुकम्पा एवं अपनी आत्मा तथा स्वर्ग नरक आदि के अस्तित्त्व को स्वीकार करना आस्तिक्य है। ये चारों ही सम्यक्त्व के गुण हैं।

प्रश्न 30. क्या सम्यग्दृष्टि जीव को आठों अंगों का पालन करना आवश्यक है ?

उत्तर - जैसे-अक्षर, मात्रा एवं अनुस्वार आदि से हीन मंत्र कार्यसिद्धि में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार अंगहीन सम्यक्त्व, जन्म सन्तति के छेदने में समर्थ नहीं होता, अत: आठों अंगों का पालन अनिवार्य है।

प्रश्न 31. विधर्मियों द्वारा जबरन नमस्कार कराये जाने पर सम्यक्त्व निर्दोष रहेगा या नहीं ?

उत्तर - अन्य विधर्मी राजा आदि की कुप्रेरणा से कुगुरु आदि को किया गया नमस्कार सम्यक्त्व को मलिन नहीं करता, क्योंकि वन्द्य-वंदक भाव पूर्वक भय, आशा और स्नेह से किया गया नमस्कार ही सम्यक्त्व को मलिन करता है अन्य नहीं।

प्रश्न 32. सम्यग्दृष्टि श्रावक राजा आदि की विनय करेगा या नहीं ?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि श्रावक राजा, विद्यागुरु एवं अपने अधिकारी वर्ग की औपचारिक विनय कर सकता है। व्यवहार विनय अथवा शिष्टाचार-पालन करने से सम्यग्दर्शन मलिन नहीं होता।

प्रश्न 33. अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर - सम्यक्त्व के नाशक कुदेवादिक की प्रशंसा या संगति करना अनायतन कहलाता है।

प्रश्न 34. मूढ़ता का क्या लक्षण है ?

उत्तर - धर्म और सम्यक्त्व में दोषजनक अविवेकीपन के कार्य को मूढ़ता कहते हैं।

प्रश्न 35. लोकमूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर - धर्म समझकर बालू और पत्थरों का ढेर लगाना, गंगा आदि नदी रूप तीर्थों में

स्नान, समुद्र में स्नान, प्रातःकाल में स्नान करना, जल में प्रवेश करके मरना, अग्नि में जल कर मरना, गाय की पूंछ आदि को ग्रहण करके मरना, पृथ्वी, अग्नि और वट वृक्ष आदि की पूजा करना लोकमूढ़ता कहलाती है। लौकिक-पारमार्थिक, हेय-उपादेय एवं स्व-पर ज्ञानरहित अज्ञानीजनों के कुल परिपाटी से आया हुआ और अन्य भी धर्माचरण है, उसको भी लोकमूढ़ता जानना चाहिए।

प्रश्न 36. देवमूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर- वर की इच्छा से रागी-द्वेषी देवों की सेवा करना अथवा ख्याति-पूजा-लाभ-रूप-लावण्य-सौभाग्य-पुत्र-स्त्री-राज्य आदि संपदा की प्राप्ति के लिए रागद्वेषयुक्त तथा आर्त रौद्र ध्यान रूप परिणामों वाले मिथ्या देवों की (अर्थात् वीतरागेतर देवों की) आराधना करना देवमूढ़ता कहलाती है।

प्रश्न 37. पाखण्ड़ मूढ़ता के अन्य नाम और लक्षण बताइये ।

उत्तर- समयमूढ़ता, शास्त्रमूढ़ता और धर्ममूढ़ता ये तीन नाम पाखण्ड़ मूढ़ता के हैं। अज्ञानी लोगों के चित्त में चमत्कार (आश्चर्य) उत्पन्न करने वाले ज्योतिष मंत्रवाद आदि को देखकर मिथ्यादेव, मिथ्या-आगम एवं खोटे तप करने वाले कुलिंगियों को भय-वांछा-स्नेह और लोभ से धर्म के लिए प्रणाम, पूजा, विनय एवं सत्कार आदि करना पाखण्ड़ मूढ़ता है ।

प्रश्न 38. ज्ञानी होकर भी इन्द्र गृहस्थ श्रावक की पूजा कैसे करता है ?

उत्तर - यहाँ पूजा का अर्थ अष्ट द्रव्य से पूजा करने का नहीं है, अपितु इन्द्रादि देव सम्यग्दृष्टि गृहस्थ की अतिशय विशेष द्वारा क्वचित् कदाचित् प्रभावना करते हैं, अर्थात् उसे विशेष सम्मानित करते हैं। जैसे-कमल के मध्य सीता को बैठाना, नाग का हार हो जाना इत्यादि। यदि देवों द्वारा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ नित्य पूज्य हो तो प्रतिदिन अढ़ाईद्वीप में विद्यमान गृहस्थी की पूजा होनी चाहिए? किन्तु ऐसा होता नहीं है।

प्रश्न 39. सम्यग्दृष्टि और एक भवावतारी इन्द्र, मनुष्यों से सब प्रकार से श्रेष्ठ है फिर वह सम्यग्दृष्टि गृहस्थ की पूजा क्यों करता है ?

उत्तर- इन्द्रादि देव कितने ही श्रेष्ठ हों किन्तु वे उसी भव में दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकते किन्तु मनुष्य भव प्राप्त करके मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है इसी सम्भावित योग्यता के कारण मनुष्य, देवों द्वारा आदर का पात्र होता है।

प्रश्न 40. सम्यग्दृष्टि जीव नरकगति एवं तिर्यंचगति में क्यों उत्पन्न होता है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन होने के पूर्व ही यदि किन्हीं जीवों ने नरकायु तिर्यंचायु का बंध कर लिया है तो वे प्रथम नरक में और भोग-भूमिज तिर्यंचों में उत्पन्न होंगे, क्योंकि आयुबंध छूटता नहीं है। यह व्यवस्था मात्र क्षायिक सम्यक्त्व की है। क्षायोपशमिक और उपशम सम्यग्दृष्टि जीव तो नरक और तिर्यंच गतियों में उत्पन्न होते ही नहीं हैं।

भूमिका

सम्यग्दर्शन हो जाने के साथ ही धर्मों से युक्त स्व-पर पदार्थों को प्रकाशित करने वाला जो ज्ञान प्रकट होता है, वह सम्यग्ज्ञान है। यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रकट होते हैं फिर भी जैसे उजाला दीपक से ही होता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन से ही प्रकट होता है। इन दोनों में कार्य कारण भाव है। सम्यग्ज्ञान के भेद एवं लक्षण आदि कहकर सम्यग्ज्ञान की अनिर्वचनीय महिमा दर्शायी गयी है। सम्यग्ज्ञान की महत्ता प्रकट करते हुए ज्ञानी एवं अज्ञानी के कर्मनाश में अन्तर और त्रिकाल में मोक्ष-प्राप्ति का अपूर्व उपाय, भेद विज्ञान रूपी जननी से उत्पन्न होने वाला सम्यग्ज्ञान ही माना गया है ।

सम्यग्ज्ञान-विवेचन के अन्त में जगत के सकल दन्द-फन्द छोड़कर आत्मध्यान करने की प्रेरणा दी गयी है पश्चात् श्रावक के बारह व्रतों का सांगोपांग विवेचन अतीव सुन्दर ढ़ंग से किया गया है।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान ॥

अन्वयार्थ- (सम्यक श्रद्धा) सम्यग्दर्शन **(धारि)** धारण कर **(पुनि)** फिर पीछे **(सम्यग्ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान को **(सेवहु)** सेवन करना चाहिए। जो सम्यग्ज्ञान **(बहुधर्मजुत)** अनेकान्त धर्मात्मक **(स्व-पर अर्थ)** अपना और पर पदार्थों का **(प्रगटावन)** ज्ञान कराने के लिये **(भान)** सूर्य के समान है।

अर्थ - सम्यग्दर्शन धारण करने के पश्चात् सम्यग्ज्ञान की सेवा करना चाहिए। जो अपनी आत्मा और पर-पदार्थों को उनके अनेक गुणों सहित सूर्य के समान स्पष्ट कराता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

सम्यकसाथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान दुहूमें भेद अबाधौ॥
सम्यक कारण जान ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होते हू प्रकाश दीपकतैं होई ॥1॥

अन्वयार्थ- (ज्ञान) सम्यग्ज्ञान **(सम्यकसाथै)** सम्यग्दर्शन के साथ **(होय)**

होता है **(पै)** तो भी **(भिन्न)** अलग **(अराधौ)** समझना चाहिए। क्योंकि **(लक्षण)** उन दोनों के लक्षण क्रमशः **(श्रद्धा)** श्रद्धान करना और **(जान)** जानना है। तथा **(सम्यक)** सम्यग्दर्शन **(कारण)** कारण है, और **(ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान **(कारज)** कार्य है **(सोई)** यह भी **(दुहूमें)** दोनों में **(भेद)** अन्तर **(अबाधौ)** निर्बाध है जैसे **(युगपत)** एक साथ **(होते हू)** होने पर भी **(प्रकाश)** उजाला **(दीपकतैं)** दीपक की ज्योति से **(होई)** होता है।

अर्थ - सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है फिर भी दोनों को अलग-अलग समझना चाहिए। सम्यग्दर्शन का लक्षण है सच्ची श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान का लक्षण है सच्चा ज्ञान। यही दोनों में बाधा-रहित भेद है। सम्यग्दर्शन कारण है और उसका कार्य सम्यग्ज्ञान है। दोनों एक साथ / एक ही समय में उत्पन्न होते हुये भी कारण-कार्य के भेद से भिन्न-भिन्न हैं। जैसे दीपक के जलने के साथ ही प्रकाश होता है तो भी दीपक को प्रकाश का कारण माना जाता है।

सम्यग्ज्ञान के भेद : देश प्रत्यक्ष के भेद व लक्षण

तास भेद दो हैं परोक्ष परतछि तिन माहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा।
द्रव्यक्षेत्रपरिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा ॥2॥

अन्वयार्थ - **(तास)** उस सम्यग्ज्ञान के **(परोक्ष)** परोक्ष और **(परतछि)** प्रत्यक्ष **(दो)** ये दो **(भेद हैं)** भेद हैं **(तिन माहीं)** उनमें **(मतिश्रुत)** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान **(दोय)** ये दोनों **(परोक्ष)** परोक्षज्ञान हैं। क्योंकि ये **(अक्ष मनतैं)** इन्द्रिय और मन से **(उपजाहीं)** उत्पन्न होते हैं। **(अवधिज्ञान)** अवधिज्ञान और **(मनपर्जय)** मनःपर्ययज्ञान **(दो)** ये दोनों ज्ञान **(देश प्रतच्छा)** देश प्रत्यक्ष **(हैं)** हैं। क्योंकि **(जिय)** जीव इनसे **(द्रव्यक्षेत्र परिमाण)** द्रव्य और क्षेत्र की मर्यादा **(लिये)** लिये हुये **(स्वच्छा)** स्पष्ट **(जानै)** जानता है।

अर्थ-सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं-परोक्ष और प्रत्यक्ष। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्ष हैं। ये इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होते हैं। प्रत्यक्ष के दो भेद हैं- देश-प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दो देश प्रत्यक्ष हैं। जीव इनके द्वारा रूपी द्रव्य और मर्यादित क्षेत्र की बात को स्पष्ट जानता है।

सकल प्रत्यक्ष और ज्ञान का महत्त्व

सकल द्रव्यके गुन अनन्त परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट केवलि भगवन्ता॥

ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन।
इहि परमामृत जन्म जरा-मृत-रोग-निवारन ॥3॥

अन्वयार्थ-जिसके द्वारा **(केवलि भगवन्ता)** केवली भगवान् **(सकल द्रव्य के)** छहों द्रव्यों के **(अनन्ता)** सीमा से रहित **(गुन)** गुणों को और **(अनंता)** अनन्त **(परजाय)** पर्यायों को **(एकै काल)** एक साथ **(प्रगट)** स्पष्ट **(जानै)** जानते हैं। वह **(सकल)** सकलप्रत्यक्ष या केवलज्ञान कहलाता है। **(जगतमें)** इस संसार में **(ज्ञान समान)** सम्यग्ज्ञान के समान **(आन)** दूसरा कोई पदार्थ **(सुख को)** सुख का **(कारन)** कारण **(न)** नहीं है। **(इहि)** यह सम्यग्ज्ञान ही **(जन्म जरा मृत रोग-निवारन)** जन्म, जरा और मृत्यु रूपी रोगों को दूर करने के लिये **(परमामृत)** उत्कृष्ट अमृत के समान है।

अर्थ-केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान के द्वारा केवली भगवान् समस्त द्रव्यों को उनके अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों सहित एक ही समय में स्पष्ट जानते हैं। सम्यग्ज्ञान के समान संसार में कोई भी वस्तु सुख देने वाली नहीं है। सम्यग्ज्ञान ही उत्तम अमृत है। इस ज्ञानामृत के पीने से जन्म, जरा और मृत्यु रूपी रोग दूर हो जाते हैं।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म निर्जरा में अंतर

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानीके छिनमाहिं, त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार, अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ।
पै निजआतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥4॥

अन्वयार्थ- अज्ञानी जीव के **(ज्ञानबिन)** सम्यग्ज्ञान बिना **(कोटि जन्म)** करोड़ों जन्मों-भवों तक **(तप तपैं)** तप तपने से **(जे)** जितने **(कर्म)** कर्म **(झरैं)** नष्ट होते हैं। **(ते)** उतने कर्म **(ज्ञानी के)** सम्यग्ज्ञानी जीव के **(त्रिगुप्ति तैं)** मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को रोकने से **(छिन माहिं)** क्षण भर में **(सहज)** आसानी से **(टरैं)** नष्ट हो जाते हैं। यह जीव **(मुनिव्रत)** मुनियों के महाव्रतों को **(धार)** धारण कर **(अनन्तबार)** अनेक बार **(ग्रीवक)** नवमें ग्रैवेयक तक **(उपजायौ)** उत्पन्न हुआ **(पै)** किन्तु **(निज आतम)** अपनी आत्मा का **(ज्ञान बिना)** ज्ञान न होने से **(लेश)** थोड़ा भी **(सुख)** सुख **(न पायौ)** प्राप्त नहीं कर सका।

अर्थ - सम्यग्ज्ञान के बिना जीव करोड़ों जन्मों में तपस्या करके जितने कर्मों को नष्ट करता है उतने कर्म ज्ञानी जीव एक क्षण में त्रिगुप्ति अर्थात् मन-वचन-काय को वश में करके आसानी से नष्ट कर देता है। इस जीव ने अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया और नवग्रैवेयक विमानों में भी उत्पन्न हुआ लेकिन आत्म-ज्ञान न होने से इसे

थोड़ा-सा भी सुख प्राप्त नहीं हुआ ।

तत्त्व अभ्यास की प्रेरणा, ज्ञान के दोषों का त्याग और मनुष्य पर्याय, सुकुल एवं जिनवाणी की दुर्लभता

तातैं जिनवर - कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजै॥
यह मानुष - पर्याय, सुकुल सुनिवो जिन-वानी।
इह विध गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥5॥

अन्वयार्थ- (**तातैं**) इसलिए (**जिनवर कथित**) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये (**तत्त्व**) परमार्थ तत्त्वों का (**अभ्यास**) पठन-पाठन (**करीजै**) करना चाहिए और (**संशय**) संशय (**विभ्रम**) विपर्यय तथा (**मोह**) अनध्यवसाय को (**त्याग**) छोड़कर (**आपो**) आत्मा का स्वरूप (**लखलीजै**) पहचानना चाहिए। अन्यथा (**यह**) यह (**मानुष पर्याय**) मनुष्य पर्याय (**सुकुल**) उत्तम श्रावक कुल और (**जिनवानी**) जिनवाणी का (**सुनिवो**) सुनना (**इहविध**) ऐसा सुयोग (**गये**) चले जाने पर (**उदधि**) समुद्र में (**समानी**) डूबे (**सुमणि ज्यों**) असली रत्न के समान फिर (**न मिलै**) प्राप्त होना कठिन है।

अर्थ - इसलिए श्री जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुये तत्त्वों का अभ्यास करना चाहिए और संशय, विभ्रम और विमोह को छोड़कर अपनी आत्मा को पहचानना चाहिए। यह मनुष्य पर्याय पाना, उसमें भी उत्तम कुल पाना और जिनवाणी सुनने का सुयोग प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है। यदि बिना आत्म ज्ञान के इस दुर्लभ अवसर को हमने खो दिया तो इसका फिर से मिलना वैसा ही दुर्लभ है। जैसे विशाल समुद्र में गिरे हुये किसी उत्तम-रत्न का पुनः मिलना कठिन है ।

सम्यग्ज्ञान की महिमा, उसका कारण और विवेक प्राप्ति

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारन स्व-पर-विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ ॥6॥

अन्वयार्थ- (**धन**) रुपया पैसा (**समाज**) कुटुम्बी (**गज**) हाथी (**बाज**) घोड़े और (**राज**) राज्य (**तो**) तो (**काज**) अपने काम में (**न आवै**) नहीं आते। किन्तु (**ज्ञान**) सम्यग्ज्ञान (**आप को रूप**) आत्मा का स्वरूप है, वह (**भये**) होने पर (फिर) फिर (**अचल**) अटल (**रहावै**) हो जाता है (**तास**) उस (**ज्ञान को**) सम्यग्ज्ञान का (**कारन**) कारण (**स्वपर विवेक**) आत्मा और पर वस्तुओं का भेदविज्ञान (**बखानौ**) कहा गया है। इसलिए (**भव्य**) हे भव्यजीवों! (**कोटि**) करोड़ों (**उपाय**) उपायों को (**बनाय**) करके (**ताको**) उस भेदविज्ञान को [सम्यग्ज्ञान

को] (**उर**) हृदय में (**आनौ**) धारण करो।

अर्थ-धन-सम्पत्ति, कुटुम्बीजन, हाथी-घोड़ा, राज्य आदि कोई भी अपने आत्मा के काम नहीं आता है। केवलज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है क्योंकि वह एक बार होने पर आत्मा के साथ स्थायी रूप से रहता है। उस ज्ञान का मुख्य कारण अपने और पराये का विवेक या भेदविज्ञान कहा गया है। इसलिए हे भव्य जीव! करोड़ों उपाय करके जैसे बने तैसे उस भेदविज्ञान को हृदय में धारण करो ।

सम्यग्ज्ञान का महत्त्व और विषय चाह रोकने का उपाय

जे पूरव शिव गये, जाहिं अरु आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय-चाह-दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै।
तासु उपाय न आन ज्ञान-घनघान बुझावै ॥7॥

अन्वयार्थ- (**पूरव**) पहले (**जे**) जो जीव (**शिव**) मोक्ष को (**गये**) जा चुके हैं (**अब**) अभी (**जाहिं**) जा रहे हैं (**अरु**) और (**आगे**) भविष्य में (**जै हैं**) जावेंगे (**मुनिनाथ**) जिनेन्द्र देव या गणधरदेव ने (**सो**) यह (**सब**) सब (**ज्ञानतनी**) सम्यग्ज्ञान का (**महिमा**) प्रभाव (**कहै हैं**) बतलाया है। (**विषय-चाह**) पाँचों इन्द्रियों के विषयों की चाह रूपी (**दवदाह**) भयंकर अग्नि (**जगतजन**) संसारी जीव रूपी (**अरनि**) जीर्ण शीर्ण पहाड़ी को (**दझावै**) जला रही है (**तास**) उसकी शान्ति का (**उपाय**) उपाय (**आन**) दूसरा (**न**) नहीं है केवल (**ज्ञान घन घान**) ज्ञानरूपी मेघों का समूह (**बुझावै**) शान्त करता है।

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान् कहते हैं कि जो जीव पहले मोक्ष गये हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और भविष्य में भी जो जीव मोक्ष जायेंगे, वह सब इसी ज्ञान का प्रभाव है । इन्द्रिय सुखों की चाह दावाग्नि के समान है जो जगत के जनसमूह रूपी वन को घेरकर सब ओर से जला रही है। इस दावाग्नि को ज्ञान रूपी मेघसमूह ही बुझा सकते हैं अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है।

पुण्य-पाप में हर्ष-विषाद का निषेध

पुण्य-पाप-फलमाहिं हरख विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल-परजाय उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकलजग-दन्द-फन्द निज-आतम ध्याओ॥8॥

अन्वयार्थ- (**भाई**) हे आत्महितैषी प्राणी! (**पुण्य फल माहिं**) पुण्य के फलों में (**हरख मत**) हर्ष मत कर और (**पाप फल माहिं**) पाप के फलों में

(विलखौ मत) द्वेष मत कर [क्योंकि ये पुण्य तथा पाप] **(पुद्गल परजाय)** पुद्गल की पर्यायें हैं। **(उपजि)** उत्पन्न होकर **(विनसै)** नष्ट हो जाती हैं और **(फिर)** फिर **(थाई)** पैदा हो जाती हैं। **(उर)** अपने हृदय में **(निश्चय)** निश्चय से **(लाख बात की बात)** लाखों बातों का सार **(यहै)** यह ही **(लाओ)** ग्रहण करो कि **(सकल)** सब अथवा पुण्य और पाप सहित **(जग-दंद-फंद)** संसार के झगड़ों को **(तोरि)** हटाकर **(नित)** हमेशा **(आतम)** अपनी आत्मा का **(ध्याओ)** ध्यान करो।

अर्थ - हे भाई ! पुण्य के फल में हर्ष मत करो और पाप के फल में द्वेष मत करो। यह पुण्य और पाप का फल तो पुद्गल की अवस्थाएँ हैं जो पैदा होती हैं और नष्ट हो जाती हैं स्थिर नहीं रह पाती। लाख बात की बात तो यही है। इस बात को निश्चय से हृदय में धारण करो और जगत के दन्द-फन्द को छोड़कर सदा अपनी आत्मा का ध्यान करो ।

सम्यक् चारित्र के भेद, अहिंसा और सत्य अणुव्रत के लक्षण

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि दिढ़ चारित्र लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥
त्रस-हिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँघारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै॥9॥

अन्वयार्थ- (सम्यग्ज्ञानी) सम्यग्ज्ञानी **(होय)** होकर **(बहुरि)** पीछे **(दिढ़)** अटल **(चारित्र)** सम्यक्चारित्र **(लीजै)** पालन करना चाहिए। **(तसु)** उसके **(एकदेश)** एकदेश **(अरु)** और **(सकलदेश)** सर्वदेश **(भेद)** भेद **(कहीजै)** कहे गये हैं। उनमें **(त्रसहिंसा को)** त्रस जीवों की हिंसा को **(त्याग)** छोड़कर **(वृथा)** बेमतलब **(थावर)** स्थावर जीवों का **(न सँघारे)** घात नहीं करना, अहिंसाणुव्रत कहलाता है। **(परवधकार)** दूसरे को दुःखदायक **(कठोर)** कड़े और **(निंद्य)** निन्दा योग्य **(वयन)** वचन **(नहिं उचारै)** नहीं बोलना सत्याणुव्रत कहलाता है।

अर्थ - सम्यग्ज्ञान होने पर फिर सम्यक्चारित्र का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। सम्यक्चारित्र के दो भेद कहे गये हैं- एकदेश चारित्र और सकलदेश चारित्र । (सकलदेश चारित्र का पालन मुनिजन करते हैं जिसका वर्णन आगे करेंगे । यहाँ एकदेश चारित्र का वर्णन किया गया है जिसका पालन श्रावकजन करते हैं) एकदेश चारित्र का पालन करने पाला श्रावक त्रस जीवों की हिंसा का त्याग कर देता है और बिना मतलब के स्थावर जीवों का भी घात नहीं करता है - यह अहिंसाणुव्रत है । वह ऐसे वचन भी नहीं बोलता है जो दूसरे के लिये प्राण-घातक हो, कठोर हो या निन्दनीय हो-यह सत्याणुव्रत है।

अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण अणुव्रतों का स्वरूप तथा दिग्व्रत का लक्षण

जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारिसों रहै विरत्ता।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन-प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै ॥10॥

अन्वयार्थ-(जलमृतिकाबिन) जल और मिट्टी के सिवाय **(और कछु)** और कोई चीज **(अदत्ता)** बिना दिये हुये **(नाहिं)** नहीं **(गहै)** लेना अचौर्याणुव्रत कहलाता है। **(निज)** अपनी **(वनिता बिन)** स्त्री के सिवाय **(सकल नारि सों)** और सब स्त्रियों से **(विरत्ता)** विरक्त **(रहै)** रहना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। **(अपनी)** अपनी **(शक्ति)** शक्ति का **(विचार)** ध्यान रख (**परिग्रह**) परिग्रह **(थोरो)** परिमित **(राखै)** रखना परिग्रह परिमाणाणुव्रत है। **(दश दिश)** दशों दिशाओं में **(गमन)** आवागमन की **(प्रमाण)** मर्यादा **(ठान)** करके **(तसु)** उसकी **(सीम)** सीमा का **(न नाखै)** उल्लंघन नहीं करना, दिग्व्रत नामक गुणव्रत कहलाता है।

अर्थ - जिस जल व मिट्टी का कोई स्वामी नहीं है उसे छोड़कर किसी भी बिना दी गई वस्तु को ग्रहण नहीं करना अचौर्याणुव्रत है। अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय संसार की सब स्त्रियों से विरक्त रहना ब्रह्मचर्याणुव्रत है । अपनी शक्ति अर्थात् आवश्यकता का विचार करके धन, धान्य आदि परिग्रह का प्रमाण कर लेना परिग्रह परिमाण-अणुव्रत है। इस प्रकार यह पाँच अणुव्रत कहे गये। अब गुणव्रतों का वर्णन करते हैं। दशों दिशाओं में आवागमन की मर्यादा निश्चित करके फिर जीवन भर उस मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना दिग्व्रत कहलाता है।

देशव्रत, अपध्यान और पापोपदेश अनर्थदण्ड के लक्षण

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण, ठान अन सकल निवारा॥
काहू की धन-हानि, किसी जय हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश होय अघ वनज कृषीतैं॥11॥

अन्वयार्थ-(फिर) पीछे **(ताहू में)** उसमें किसी प्रसिद्ध **(ग्राम)** गाँव, **(गली)** रास्ता, **(गृह)** मकान, **(बाग)** बगीचा और **(बजारा)** बाजार तक **(गमना-गमन)** आवागमन की **(प्रमाण)** सीमा **(ठान)** करके **(अन)** और **(सकल)** सबका **(निवारा)** त्याग कर देना देशव्रत कहलाता है। **(काहू की)** किसी की **(धनहानि)** धन के नाश का **(किसी)** किसी की **(जय)** जीत का और **(हार)** पराजय का **(न चिन्तै)** विचार न करना अपध्यान अनर्थदण्डव्रत कहलाता है। **(वनज)**

व्यापार और **(कृषीतैं)** खेती से **(अघ)** पाप **(होय)** होता है इसलिए **(सो)** ऐसा **(उपदेश)** उपदेश **(न देय)** नहीं देना पापोपदेश अनर्थदण्डव्रत है।

अर्थ - दिग्व्रत में निर्धारित की गयी दशों दिशाओं की मर्यादा के अन्तर्गत ग्राम, गली, घर, बगीचा, बाजार आदि स्थानों तक आने जाने की मर्यादा थोड़े समय के लिये निश्चित कर लेना और उसके आगे नहीं जाना देशव्रत कहलाता है। किसी के धन का विनाश हो, किसी की जीत हो या किसी की हार हो ऐसा निष्प्रयोजन व्यर्थ विचार नहीं करना अपध्यान नामक पहला अनर्थदण्ड व्रत है। ऐसा व्यापार या खेती करने का दूसरों को उपदेश नहीं देना, जिससे बहुत पाप का बंध हो, यह पापोपदेश नामक दूसरा अनर्थदण्ड व्रत है।

प्रमादचर्या, हिंसादान और दुःश्रुति अनर्थदण्डों का स्वरूप और उनके त्याग का उपदेश

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे यश लाधै॥
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड-हेतु, अघ तिन्हैं न कीजै॥12॥

अन्वयार्थ- (प्रमाद कर) शिथिलाचार से-बेमतलब **(जल)** जलकायिक **(भूमि)** पृथ्वीकायिक **(वृक्ष)** वनस्पतिकायिक **(पावक)** अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों का **(न विराधै)** घात नहीं करना प्रमादचर्या अनर्थदण्ड व्रत कहलाता है। **(असि)** तलवार **(धनु)** धनुष **(हल)** हल आदि **(हिंसोपकरण)** हिंसा के कारण पदार्थों को **(दे)** देकर **(यश)** नामवरी **(नहिं लाधै)** नहीं कमाना हिंसादान अनर्थदण्डव्रत कहलाता है। **(रागद्वेष करतार)** राग और द्वेष को करने वाली **(कथा)** कथाएँ **(कबहूँ)** कभी भी **(न सुनीजै)** नहीं सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्डव्रत कहलाता है। **(औरहु)** और भी **(अघ हेतु)** पाप के कारण **(अनरथदण्ड)** अनर्थदण्ड हैं **(तिन्हैं)** उन्हें भी **(न कीजै)** नहीं करना चाहिए।

अर्थ - निष्प्रयोजन व्यर्थ में जल, भूमि, वृक्ष, अग्नि और वायु को नष्ट नहीं करना यह प्रमादचर्या नामक तीसरा अनर्थदण्ड-व्रत है। तलवार, धनुष, हल या हिंसा के अन्य उपकरण दूसरों को नहीं देना और न ही उसे देने में यश मानना, हिंसादान नामक चौथा अनर्थदण्ड व्रत है। राग-द्वेष उत्पन्न करने वाली कथा-कहानी नहीं सुनना और न ही सुनाना यह दुःश्रुति नामक पाँचवां अनर्थदण्ड व्रत है। इनके सिवाय और भी निष्प्रयोजन अनर्थ कार्य जिससे पाप बंध हो, कभी नहीं करना चाहिए।

सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत का स्वरूप

धर उर समता-भाव, सदा सामायिक करिये।
परव-चतुष्टयमाहिं, पाप तज प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥13॥

अन्वयार्थ- (उर) मन में **(समताभाव)** निर्विकल्पता को या शल्य के अभाव को **(धर)** धारण करके **(सदा)** प्रतिदिन **(सामायिक)** सामायिक **(करिये)** करना सामायिक शिक्षाव्रत कहलाता है। **(परव चतुष्टयमाहिं)** चारों पर्वों के दिनों में **(पाप)** पाप के कामों को **(तज)** छोड़कर **(प्रोषध)** प्रोषधोपवास **(धरिये)** करना प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहलाता है। **(भोग)** भोगरूप वस्तुओं का और **(उपभोग)** उपभोग रूप वस्तुओं का **(नियम करि)** परिमाण कर शेष सबसे **(ममत)** मोह **(निवारै)** हटाना भोगोपभोग परिमाणव्रत कहलाता है। **(मुनि को)** दिगम्बर मुनि आदि पात्रों को **(भोजन)** आहार **(देय)** देकर **(फेर)** पीछे **(निज)** स्वयं **(अहारै)** भोजन **(करहि)** करना अतिथि संविभागव्रत कहलाता है।

अर्थ - हृदय में समताभाव धारण कर प्रतिदिन पंचपरमेष्ठी का स्मरण करना सामायिक नाम का पहला शिक्षाव्रत है। एक माह में दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ऐसे चार पर्व के दिन होते हैं, इन दिनों में सब पाप कार्य छोड़कर उपवास आदि करना यह प्रोषधोपवास नाम का दूसरा शिक्षाव्रत है। प्रतिदिन भोग और उपभोग की वस्तुओं के प्रति ममत्व भाव कम करना यह भोगोपभोग परिमाण नाम का तीसरा शिक्षाव्रत है। मुनि, आर्यिका, त्यागी-व्रती आदि अतिथि जनों को आहार-दान देकर फिर स्वयं भोजन करना यह अतिथि-संविभाग नाम का चौथा शिक्षाव्रत है।

व्रत पालन का फल

बारह व्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै॥
यों श्रावकव्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तँहतैं चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै॥14॥

अन्वयार्थ-जो प्राणी **(बारह व्रत के)** बारह व्रतों के **(पन पन)** पाँच पाँच **(अतिचार)** अतिचारों को **(न लगावै)** नहीं लगाता है और **(मरण समै)** मृत्यु के समय **(संन्यास)** समाधिमरण **(धार)** धारण कर **(तसु)** उसके **(दोष)** दोषों को **(नशावै)** दूर करता है। वह **(यों)** इस प्रकार **(श्रावकव्रत)** श्रावक के व्रतों को **(पाल)** पालनकर **(सोलम)** सोलहवें **(स्वर्ग)** स्वर्ग पर्यन्त **(उपजावै)** पैदा होता

है और **(तँहतैं)** वहाँ से **(चय)** मरण कर **(नर जन्म)** मनुष्य पर्याय **(पाय)** पाकर **(मुनि)** साधु **(ह्वै)** होकर **(शिव)** मोक्ष **(जावै)** जाता है।

अर्थ –श्रावक अपने बारह व्रतों में होने वाले पाँच-पाँच दोष नहीं लगावें और अंत समय समाधि मरण धारण कर उसके भी दोषों को दूर करे । इस प्रकार जो श्रावक बारह व्रतों का निर्दोष पालन करता है, वह सोलहवें स्वर्ग तक के देवों में उत्पन्न होता है । वहाँ से निकलकर मनुष्य भव प्राप्त करता है और फिर मुनि बनकर मोक्ष पाता है ।

शिक्षा

इस चौथी ढाल में तीन बातें सीख लेनी चाहिए-

1. आत्मज्ञान से ही हमें सच्ची शान्ति मिल सकती है । इसलिए हमें आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गए शास्त्रों का श्रद्धापूर्वक चिंतन-मनन करने से आत्मज्ञान आसानी से प्राप्त किया जा सकता है ।

2. कर्म के उदय में जो सुख-दु:ख मिलता है, उसे समता पूर्वक सहन करने की आदत डालनी चाहिए क्योंकि आत्मज्ञान की प्राप्ति का यही सुफल है ।

3. हमें घर-गृहस्थी में रहकर भी श्रावक के योग्य व्रतों का पालन करने का प्रयास करना चाहिए। समाधि मरण और मुनि बनने की भावना सदा बनाए रखना चाहिए। यही कल्याण का मार्ग है ।

प्रश्न 1. सम्यग्ज्ञान का क्या लक्षण है ?

उत्तर – जो अनेक धर्मात्मक स्व और पर पदार्थों को यथावत् जानता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 2. सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में क्या अन्तर है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शन का लक्षण श्रद्धा है और यह कारण है तथा सम्यग्ज्ञान का लक्षण जानना है और यह कार्य है।

प्रश्न 3. सम्यग्ज्ञान के भेद और उनके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर– सम्यग्ज्ञान के मूल दो भेद हैं-प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान के भी दो भेद हैं- सकल प्रत्यक्ष और देश प्रत्यक्ष। छहों द्रव्यों की त्रिकालवर्ती अनन्त गुण और पर्यायों को जो एक साथ दर्पण सदृश स्पष्ट जानता है, वह सकल प्रत्यक्ष है। जैसे-केवलज्ञान। जो ज्ञान, रूपी पदार्थ को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जानता है, वह देश-प्रत्यक्ष है। जैसे-अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान। जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थों को जानता है, वह परोक्ष ज्ञान है। जैसे-मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

प्रश्न 4. परोक्ष और प्रत्यक्ष ज्ञान में क्या अन्तर है ?

उत्तर – जो इन्द्रिय आदि की सहायता से उत्पन्न होता है, उसे परोक्ष ज्ञान तथा जो

इन्द्रिय आदि की सहायता के बिना ही उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 5. परोक्ष (मति-श्रुत) और देश प्रत्यक्ष (अवधि-मन:पर्यय) ज्ञानों के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान पदार्थों को इन्द्रिय और मन की सहायता से जानता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान मतिज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थ के विशेष को जानता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा पूर्वक रूपी पदार्थ को आत्मा से जानता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा पूर्वक, परकीय मनोगत सरल और गूढ़ पदार्थों को जानता है, उसे मन:पर्यय ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 6. पाँचों ज्ञानों में से आत्मकल्याण में कौन सा ज्ञान विशेष सहायक है ?

उत्तर– पाँचों सम्यग्ज्ञानों में से आत्मा के कल्याण का सम्बन्ध सम्यक् श्रुतज्ञान से है, क्योंकि इसी के द्वारा सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान होता है।

प्रश्न 7. केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान छहों द्रव्यों के अनन्तानन्त गुणों को और तीनों कालों तथा तीनों लोकों में होने वाली इनकी अनन्त पर्यायों को एक साथ जानता है, उसे केवलज्ञान या सकल प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 8. द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो सत् लक्षण वाला और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त है, उसे द्रव्य कहते हैं। अथवा गुण और पर्याय के समुदाय को द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 9. गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो किसी द्रव्य को अन्य द्रव्य से पृथक् करता है, उसे गुण कहते हैं। अथवा द्रव्यों में भेद करने वाले धर्म को गुण कहते हैं।

प्रश्न 10. पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य के विकार को अथवा गुणों की प्रतिसमय होने वाली अवस्था विशेष को अथवा जो स्वभाव-विभाव रूप से परिणमन करती है, उसे पर्याय कहते हैं।

प्रश्न 11. ज्ञान को परम अमृत क्यों कहा ?

उत्तर – लोक में यह प्रसिद्धि है कि अमृत पीने से मनुष्य अजर, अमर हो जाता है। यह मान्यता तो असत्य हो सकती है किन्तु ज्ञान रूपी अमृत पीने वाला तो निश्चित अजर-अमरपने को प्राप्त हो जाता है, इसलिए उसे परमामृत कहा है।

प्रश्न 12. ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म-नाश में क्या अन्तर है ?

उत्तर – अज्ञानी जीव बाल-तप के द्वारा करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है, उतने कर्मों को ज्ञानी जीव त्रिगुप्ति के द्वारा क्षण भर में ही नष्ट कर देता है।

प्रश्न 13. त्रिगुप्ति क्या है ?

उत्तर – मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को भली प्रकार रोक कर आत्मा में लीन करने को त्रिगुप्ति (मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति) कहते हैं।

प्रश्न 14. सुकुल किसे कहते हैं ?

उत्तर – कुल, वंश, गोत्र और सन्तान ये एकार्थवाची है। सन्तान परम्परा से जो लोकपूजित हैं, प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा के योग्य हैं, जो अपनी विवाहिता स्त्री का ही सेवन करते हैं, अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थों के सन्तान परम्परा से त्यागी हैं एवं जो सज्जाति आदि सप्त परमस्थान को प्राप्त हैं, वे सुकुल कहे गये हैं।

प्रश्न 15. सम्यग्ज्ञान के दोष कितने हैं और उनके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर – संशय, विभ्रम और अनध्यवसाय ये तीन दोष सम्यग्ज्ञान के हैं। संशय-विरुद्ध अनेक कोटि का अवलम्बन करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे-मैं शरीर हूँ या जीव ? (डॉवांडोल प्रवृत्ति)। विभ्रम-विपरीत ज्ञान को विभ्रम कहते हैं। जैसे-यह शरीर ही आत्मा है। अनध्यवसाय -''कुछ है'' इस प्रकार निश्चयरहित ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे-मैं कुछ भी हूँ।

प्रश्न 16. आत्मज्ञान का कारण क्या है ?

उत्तर- आत्मा और परपदार्थों का भेदविज्ञान ही आत्मज्ञान का प्रमुख कारण है।

प्रश्न 17. विषयों की दाह को शांत करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – जैसे मूसलाधार जल की वर्षा वन की भयंकर अग्नि को बुझा देती है, वैसे ही सम्यग्ज्ञान रूपी मेघ की वर्षा विषयों की चाह रूपी दावाग्नि को शांत कर देती है।

प्रश्न 18. पुण्य और पाप के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – जो अशुभ गतियों एवं अशुभ प्रवृत्तियों से जीव की रक्षा करे तथा सुख सामग्री प्राप्ति में कारण हो, उसे पुण्य कहते हैं और जो शुभ गतियों एवं शुभ प्रवृत्तियों से जीव को रोके दु:खदायक सामग्री प्राप्ति कराने में कारण हो, उसे पाप कहते हैं।

प्रश्न 19. एकदेश और सकलदेश चारित्र के स्वामी कौन-कौन हैं ?

उत्तर – एकदेश चारित्र का पालन श्रावक जन करते हैं और सकल देश चारित्र का पालन मुनिराज करते हैं।

प्रश्न 20. अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – हिंसादि पाँचों पापों का स्थूल रूप से एकदेश त्याग करना अणुव्रत है।

प्रश्न 21. अहिंसाणुव्रती श्रावक यदि त्रसहिंसा का त्याग सर्वथा कर देता है तो वह व्यापार आदि आरम्भ एवं धर्म और अपने धन-जन की रक्षा कैसे कर सकेगा ?

उत्तर – संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी के भेद से हिंसा चार प्रकार की होती है। इसमें से ''मैं इस जीव को मारूं'' इस प्रकार के संकल्प पूर्वक किसी त्रस जीव की हिंसा अहिंसाणुव्रती श्रावक नहीं करता, किन्तु वह व्रती आरम्भी,

उद्योगी और विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता। धर्म की, प्राणों की एवं परिवार आदि की रक्षा हेतु अन्य उपाय न होने पर परिस्थिति वश यथायोग्य साधन लेकर शत्रु का सामना भी कर सकता है ।

प्रश्न 22. ''वृथा थावर न सँघारे '' पद का क्या भाव है ?

उत्तर- व्रती श्रावक दयावान होता है, वह बिना प्रयोजन पृथ्वी आदि खोदना, भूमि कर्षण करना, जमीन कुरेदना, नल खुला रख कर स्नान करना, मोटर चलाकर फर्श आदि की सफाई करना, बिना प्रयोजन बार-बार लाइट, टी.वी. एवं पंखा आदि खोलना और बन्द करना। टहलते हुए वनस्पति आदि को तोड़ना, कुचलना, ठोकर देना तथा अन्य-अन्य प्रकार से उनकी कटिंग आदि कराना ऐसे अन्य भी कार्य नहीं करेगा, जिसमें बिना कारण स्थावर जीवों का घात हो। उपर्युक्त पद का यही भाव है।

प्रश्न 23. अणुव्रती श्रावक किस प्रकार की मिट्टी और जल ग्रहण नहीं करेगा ?

उत्तर – जिस जल और मिट्टी पर किसी व्यक्ति विशेष का स्वामित्व है अथवा जिस जल या मिट्टी पर जनसाधारण के लिए रुकावट है; ऐसे जल और मिट्टी तथा अपने स्वामित्व रहित अन्य कोई भी वस्तु बिना दिये न स्वयं लेना और न उठाकर अन्य को देना। बिना आज्ञा खेती के लिए नहरों का जल और जहाँ मिट्टी मोल बिकती है वहाँ की मिट्टी लेना भी चोरी है, क्योंकि ऐसा करने से स्वयं के परिणामों में और जल आदि के स्वामियों को दु:ख होता है।

प्रश्न 24. ब्रह्मचर्याणु व्रतधारी श्रावक के भी अन्य क्या कर्तव्य हैं ?

उत्तर – स्व-स्त्री में भी आसक्ति नहीं रखना। दिवा मैथुन का त्याग करना, रात्रि के प्रथम पहर और अन्तिम पहर में भोग नहीं करना, तथा यथाशक्य अधिक समय ब्रह्मचर्य व्रत से ही रहना। पर्व के दिनों में ब्रह्मचर्य रखना सिनेमा देखने तथा टी.वी. पर फिल्म या अश्लील दृश्यों का त्याग करना आदि।

प्रश्न 25. दिग्व्रत और देशव्रत में क्या अन्तर है ?

उत्तर – दिग्व्रत में दशों दिशाओं के क्षेत्र की सीमा जीवन पर्यन्त के लिए की जाती है, किन्तु देशव्रत में दिग्व्रतजन्य विस्तृत क्षेत्र की सीमा में घड़ी, घण्टा, दिन, माह, ऋतु, अयन एवं वर्ष आदि काल के नियम से किसी प्रसिद्ध ग्राम, मार्ग, मकान, बगीचा एवं बाजार आदि तक ही आवागमन की मर्यादा की जाती है।

प्रश्न 26. दिग्व्रत धारण करने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर – दिग्व्रत में ग्रहण किये गये क्षेत्र के बाहर के क्षेत्र का जीवन-पर्यन्त के लिए आवागमन का, व्यापार आदि का एवं तज्जन्य संकल्प-विकल्प का त्याग हो जाने से सीमा के बाहर के क्षेत्र का वह त्याग महाव्रत सदृश हो जाता है, उसे यह सर्वोत्तम उपलब्धि होती है।

प्रश्न 27. गुणव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – मूलगुणों और अणुव्रतों को दृढ़ करने वाले व्रत गुणव्रत कहलाते हैं।

प्रश्न 28. अनर्थदण्डव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – बिना प्रयोजन मन, वचन एवं काय की अशुभ (पापजनक) प्रवृत्तियों का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।

प्रश्न 29. क्या अनर्थदण्डव्रत पाँच ही हैं ?

उत्तर – अनर्थदण्डव्रत और भी अनेक हैं। पाँच का विवेचन करना तो दिग्दर्शन मात्र है। जितने भी पापजनक निष्प्रयोजन कार्य हैं, उनका त्याग करना, वे सब अनर्थदण्डव्रत हैं।

प्रश्न 30. प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास किसे कहते हैं ?

उत्तर – आरम्भ और विषय कषायों का त्याग करके दिन में एक बार ही भोजन पान करना प्रोषध है। आरम्भ आदि के साथ-साथ चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है और उपवास के पूर्व एवं पश्चात् भी प्रोषध करना प्रोषधोपवास है। जैसे-सप्तमी का प्रोषध, अष्टमी का उपवास और नवमीं का पुन: प्रोषध करना प्रोषधोपवास है।

प्रश्न 31. परिग्रह परिमाणाणुव्रत और भोगोपभोगपरिमाण व्रत में क्या अन्तर है ?

उत्तर – परिग्रह परिमाणाणुव्रत में परिग्रह का जो प्रमाण रखा जाता है, भोगोपभोग परिमाण व्रत में उसे और कम किया जाता है।

प्रश्न 32. भोग और उपभोग में क्या अन्तर है ?

उत्तर – जो वस्तुएँ एक ही बार भोगने में आती है, उन्हें भोग कहते हैं। जैसे-भोजन आदि। जो वस्तुएँ बार-बार भोगने में आती हैं, उन्हें उपभोग कहते हैं। जैसे-वस्त्र, मकान आदि।

प्रश्न 33. अतिचार किसे कहते हैं ?

उत्तर – ग्रहण किये हुए व्रतों का प्रमाद आदि के कारण एकदेश भंग हो जाना अतिचार कहलाता है।

प्रश्न 34. संन्यास का क्या लक्षण है ?

उत्तर – आत्मकल्याण हेतु मरण उपस्थित होने पर, क्रमश: (धीरे-धीरे) काय और कषाय के कृश करने को संन्यास, सल्लेखना या समाधि कहते हैं।

प्रश्न 35. संल्लेखना, मरण और आत्मघात में क्या अन्तर है ?

उत्तर – नि:प्रतिकार रोगादि हो जाने पर या जंघाबल घट जाने पर या नेत्र की ज्योति क्षीण हो जाने पर या अन्य भी कोई कारण उपस्थित हो जाने पर आत्मकल्याण अर्थात् संयम की रक्षा हेतु काय और कषाय को कृष करते हुए शरीर विसर्जन करना सल्लेखना है और अपमान या असह्य वेदना या क्रोधादि कषायों के वशीभूत हो अग्नि, जल, अस्त्र, विष भक्षण आदि के माध्यम से या श्वास तथा अन्न पानादि के निरोध पूर्वक प्राण विसर्जन करना आत्मघात है। यह आत्मघात संसार के दु:खों को बढ़ाने वाला है।

भूमिका

वैराग्य की अनुभूति के बिना मुनिपद प्राप्त नहीं हो सकता और वैराग्य उत्पन्न करने वाली माता है अनुप्रेक्षा। इसलिए संसार, शरीर और भोगों से विरक्त भव्यजनों को बारह भावनाओं का चिन्तन अवश्यमेव करना चाहिए। जैसे पवन के लगने से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है उसी प्रकार इन बारह भावनाओं के अनुचिंतन से समता रूपी सुख प्रकट हो जाता है। समता के प्रकट होते ही आत्मस्वरूप का बोध एवं उसमें तल्लीनता अर्थात् स्थिरता आ जाती है जिससे मोक्ष सुख प्राप्त होता है। मुमुक्षुजनों को वैराग्यवर्द्धक इन बारह भावनाओं का चिंतन निरन्तर करते रहना चाहिए।

भावनाओं के चिन्तन का कारण, अधिकारी और लाभ

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भवभोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई ॥1॥

अन्वयार्थ – (भाई) हे भव्यजीव! **(सकलव्रती)** महाव्रती **(मुनि)** दिगम्बर मुनिराज **(बड़भागी)** विशेष भाग्यवान् हैं क्योंकि वे **(भवभोगनतैं)** संसार और भोगों से **(वैरागी)** विरक्त हो जाते हैं और वे **(वैराग्य)** वैराग्य रूपी पुत्र को **(उपावन)** उत्पन्न करने के लिए **(माई)** माता के समान **(अनुप्रेक्षा)** बारह भावनाओं का **(चिंतैं)** चिन्तन करते हैं।

अर्थ- हे भाई! मुनिजन अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों के धारी होते हैं वे बहुत पुण्यवान हैं और संसार के भौतिक सुखों से विरक्त रहते हैं। वे वैराग्य को उत्पन्न करने के लिये माता के समान बारह-भावनाओं का चिन्तन करते हैं।

भावनाओं का फल

इन चिंतत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥2॥

अन्वयार्थ – (जिमि) जैसे **(पवन)** हवा के **(लागै)** लगने से **(ज्वलन)** अग्नि **(जागै)** धधक उठती है, उसी प्रकार इन बारह भावनाओं के **(चिंतत)** चिन्तन करने से **(समसुख)** समतारूपी सुख, **(जागै)** जागृत हो जाता है, इन भावनाओं के द्वारा **(जब ही)** जब **(जिय)** जीव **(आतम)** आत्मा को **(जानै)** पहचानता है

(तब ही) तब ही **(जिय)** जीव **(शिवसुख)** मोक्षरूपी सुख को **(ठानै)** प्राप्त करता है।

अर्थ - इन बारह भावनाओं का चिन्तन करने से समतारूपी सुख प्रकट होता है जैसे हवा लगने से अग्नि प्रज्वलित होती है । जब यह जीव आत्मा के स्वरूप को जान लेता है तब ही वह मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

अनित्य भावना का लक्षण

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥3॥

अन्वयार्थ- (जोवन) जवानी **(गृह)** घर **(गो)** गाय **(धन)** रुपया पैसा **(नारी)** स्त्री **(हय)** घोड़ा **(गय)** हाथी **(जन)** कुटुम्बी **(आज्ञाकारी)** आज्ञा मानने वाले नौकर चाकर **(इन्द्रियभोग)** पाँचों इन्द्रियों के भोग **(सुरधनु)** इन्द्रधनुष और **(चपला)** बिजली की **(चपलाई)** चंचलता के समान **(छिन थाई)** क्षणमात्र रहने वाले हैं।

अर्थ - यौवन, घर, गाय-बैल, धन-पैसा, स्त्री, घोड़ा-हाथी, आज्ञा के अनुरूप चलने वाले नौकर-चाकर तथा इन्द्रिय के भोग ये सब क्षणिक हैं, जैसे इन्द्रधनुष या बिजली देखते-देखते नष्ट हो जाती है वैसे ही धन-पैसा आदि सभी पदार्थ नश्वर या चंचल हैं। ऐसा चिन्तन करना अनित्य-भावना है।

अशरण भावना का लक्षण

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥4॥

अन्वयार्थ- (सुर असुर खगाधिप) इन्द्र, नागेन्द्र और खगेन्द्र **(जेते)** जो जो हैं **(ते)** उन सब को **(मृग)** हिरण को **(हरि ज्यों)** सिंह के समान **(काल)** मौत **(दले)** नष्ट कर देती है। **(मणि)** चिन्तामणि आदिक मणि **(मंत्र)** बड़े-बड़े रक्षामंत्र और **(तंत्र)** टोटके आदि **(बहु होई)** बहुत हैं। पर **(मरते)** मरते हुये जीव को **(कोई)** कोई भी **(न बचावै)** नहीं बचा सकता है।

अर्थ - देव, राक्षस, चक्रवर्ती अथवा चाहे कोई भी क्यों न हो वे सब मृत्यु के द्वारा वैसे ही नाश को प्राप्त हो जाते हैं जैसे हिरण सिंह के द्वारा नष्ट हो जाता है। मणि, मंत्र, तंत्र आदि कितने ही उपाय क्यों न किये जायें किन्तु कोई भी किसी को मरण से नहीं बचा सकता है। ऐसा चिन्तन करना अशरण-भावना है ।

संसार भावना का लक्षण

चहुँगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥5॥

अन्वयार्थ- (जीव) जीव **(चहुँगति)** चारों गतियों के **(दुख)** दुःख **(भरै हैं)** सहते हैं और **(पंच)** पाँच **(परिवर्तन)** परावर्तन **(करै हैं)** करते हैं। **(संसार)** संसार **(सबविधि)** सब प्रकार से **(असारा)** सार रहित है **(यामैं)** इस संसार में **(सुख)** सुख **(लगारा)** थोड़ा सा भी **(नाहिं)** नहीं है।

अर्थ-जीव चारों गतियों में दुःख सहन करते हैं और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ऐसे पाँच परावर्तन को करते हैं । सब तरह से यह संसार असार है इसमें थोड़ा-सा भी सुख नहीं है। ऐसा चिन्तन करना संसार-भावना है ।

एकत्व भावना का लक्षण

शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥6॥

अन्वयार्थ-(जेते) जो जो **(शुभ करम फल)** पुण्यकर्म के अच्छे फल और **(अशुभ करम फल)** पाप कर्म के खोटे फल हैं **(तेते)** उनको **(जिय)** यह जीव **(एकहि)** अकेला ही **(भोगै)** भोगता है **(सुत)** पुत्र **(दारा)** स्त्री **(सीरी)** हिस्सेदार **(न होय)** नहीं होते हैं **(सब)** ये सब **(स्वारथ के)** मतलब के **(भीरी)** गरजी या स्वार्थी **(हैं)** हैं।

अर्थ-इस जीव के जितने भी अच्छे या बुरे कर्म-फल हैं उनको यह जीव अकेला ही भोगता है। पुत्र-स्त्री आदि कोई भी सुख-दुःख के साथी नहीं हैं। ये सब स्वार्थ वश सगे-बने हुये हैं। ऐसा चिन्तन करना एकत्व-भावना है।

अन्यत्व भावना का लक्षण

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥7॥

अन्वयार्थ- (जिय तन) जीव और शरीर **(जलपय ज्यों)** पानी और दूध के समान **(मेला)** मिले हुये हैं, **(पै)** तो भी **(भिन्न-भिन्न)** अलग-अलग हैं। **(भेला)** एक रूप मिले हुये **(नहिं)** नहीं है **(तो)** फिर **(प्रगट)** स्पष्ट रूप से **(जुदे)** अलग दिखने वाले **(धन)** रुपया, पैसा **(धामा)** मकान **(सुत)** पुत्र और **(रामा)** स्त्री आदि **(मिल)** मिलकर **(इक)** एक **(क्यों)** कैसे **(ह्वै)** हो सकते हैं।

अर्थ - पानी और दूध के समान आत्मा और शरीर का मिलन हुआ है किन्तु वे दोनों अलग-अलग हैं। जब शरीर आत्मा से अलग है तो फिर स्पष्ट रूप से अलग

दिखने वाले धन-सम्पत्ति, मकान, पुत्र, स्त्री आदि कैसे अपने हो सकते हैं। ऐसा चिन्तन करना अन्यत्व-भावना है।

अशुचि भावना का लक्षण

पल-रुधिर राध-मल-थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नवद्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किमि यारी ॥8॥

अन्वयार्थ-जो **(पल)** मांस **(रुधिर)** खून **(राध)** पीप और **(मल)** विष्टा की **(थैली)** थैली है **(कीकस)** हड्डी **(वसादितैं)** चरबी आदि से **(मैली)** अपवित्र है और जिसमें **(घिनकारी)** घृणा पैदा करने वाले **(नवद्वार)** नौ दरवाजे **(बहैं)** बहते हैं **(अस)** ऐसे अपवित्र **(देह)** देह में **(यारी)** प्रेम **(किमि)** कैसे **(करै)** किया जाय।

अर्थ - यह शरीर मांस, खून, पीप और विष्टा की थैली है। हड्डी, चर्बी आदि अपवित्र वस्तुओं से मैली है। इस शरीर में नौ स्थानों से घृणा उत्पन्न करने वाले मलिन पदार्थ सदा बहते रहते हैं। ऐसे अपवित्र शरीर से कोई कैसे प्रीति रख सकता है। ऐसा चिन्तन करना अशुचि-भावना है ।

आस्रव भावना का लक्षण

जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ॥9॥

अन्वयार्थ- **(भाई)** हे भव्यजीव! **(जो)** जो **(योगन की)** मन, वचन, काय इन तीनों योगों की **(चपलाई)** चंचलता है **(तातैं)** उससे **(आस्रव)** आस्रव **(ह्वै)** होता है और **(आस्रव)** आस्रव **(घनेरे)** बहुत **(दुखकार)** दुःखदाई हैं, इसलिए **(बुधिवंत)** समझदार मनुष्य **(तिन्हैं)** उनको **(निरवेरे)** दूर करें।

अर्थ - हे भाई ! मन-वचन और काय के निमित्त से आत्मा में हलन-चलन रूप चंचलता होती है इसी चंचलता से कर्मों का आना होता है और यही आस्रव कहलाता है। ये आस्रव बहुत दुःखदायी है। जो बुद्धिमान हैं वे इसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा चिन्तन करना आस्रव-भावना है ।

संवर भावना का लक्षण

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥10॥

अन्वयार्थ- **(जिन)** जिन्होंने **(पुण्य)** शुभभाव और **(पाप)** अशुभभाव **(नहिं कीना)** नहीं किये केवल **(आतम)** आत्मा के **(अनुभव)** चिन्तन में **(चित)** मन **(दीना)** लगाया **(तिन ही)** उन्होंने **(आवत)** आते हुये **(विधि)** कर्मों को

(रोके) रोका और **(संवर)** संवर को **(लहि)** पाकर **(सुख)** सुख का **(अवलोके)** साक्षात्कार किया है।

अर्थ-जिन जीवों ने अपने भावों को शुभ या अशुभ रूप नहीं होने दिया है और मात्र आत्मा के चिन्तन में अपना मन लगाया है उन्होंने ही आते हुये कर्मों को रोका है और संवर की प्राप्ति करके सुख पाया है। ऐसा चिन्तन करना संवर-भावना है ।

निर्जरा भावना का लक्षण

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज-काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥11॥

अन्वयार्थ-जो **(निजकाल)** अपना-अपना समय **(पाय)** पाकर **(विधि)** कर्मों का **(झरना)** नष्ट होना सविपाक या अकामनिर्जरा है **(तासों)** उससे **(निजकाज)** अपना लाभ **(न सरना)** नहीं होता है। किन्तु **(जो)** जो निर्जरा **(तपकरि)** तप के द्वारा **(कर्म)** कर्मों का **(खिपावै)** नाश करती है वह अविपाक या सकाम निर्जरा है। **(सोई)** वही **(शिवसुख)** मोक्ष का सुख **(दरसावै)** दिखाती है।

अर्थ-अपना समय पूरा होने पर जो कर्म झड़ जाते हैं उससे आत्मा का कोई लाभ नहीं होता किन्तु जब जीव तपस्या करके कर्मों को समय से पहले नष्ट कर देता है तब ऐसी निर्जरा ही मोक्ष-सुख प्राप्त कराती है। ऐसा चिन्तन करना निर्जरा-भावना है।

लोक भावना का लक्षण

किनहू न करै न धरै को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता,दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥12॥

अन्वयार्थ- इस संसार को **(किनहू)** किसी ने **(न करौ)** नहीं बनाया है **(को)** कोई **(न धरै)** धारण नहीं किये हैं **(को)** कोई **(न हरै)** नष्ट नहीं कर सकता है और यह **(षट्द्रव्यमयी)** छह द्रव्यों से भरा हुआ है **(सो)** ऐसे **(लोकमांहि)** संसार में **(बिन समता)** सन्तोष के बिना **(नित)** हमेशा **(भ्रमता)** भटकता हुआ **(जीव)** प्राणी **(दुख सहै)** दुःख सहता है।

अर्थ - इस लोक को किसी ने बनाया नहीं है और न ही कोई इसे धारण किये हुये है। यह लोक तो शाश्वत छह द्रव्यों से मिलकर बना हुआ है कोई इसका कभी नाश नहीं कर सकता है। इस लोक में जीव वीतराग-भाव के बिना सदा भ्रमण करता है और दुःख सहता रहता है। ऐसा चिन्तन करना लोक-भावना है ।

बोधिदुर्लभ भावना का लक्षण

अन्तिम ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥13॥

अन्वयार्थ- (अन्तिम) नवमें **(ग्रीवकलौं की हद)** ग्रैवेयक तक के **(पद)** पद **(अनन्त बिरियाँ)** अनेक बार **(पायो)** पाये पर **(सम्यग्ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान **(न)** नहीं **(लाधौ)** पाया **(दुर्लभ)** ऐसे कठिन सम्यग्ज्ञान को **(मुनि)** दिगम्बर मुनिराजों ने ही **(निज में)** अपनी आत्मा में **(साधौ)** धारण किया है।

अर्थ - इस जीव ने नव-ग्रैवेयक तक जाकर अनन्त बार अहमिन्द्र पद पाया, पर सम्यग्ज्ञान इसे प्राप्त नहीं हुआ। ऐसे दुर्लभता से प्राप्त होने वाले सम्यग्ज्ञान का मुनिजनों ने ही आत्मा में साधन किया है। ऐसा चिन्तन करना बोधिदुर्लभ-भावना है।

धर्म भावना का लक्षण

जे भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारै ॥14॥

अन्वयार्थ- (मोहतैं) मिथ्यात्व से **(न्यारे)** अलग **(जे)** जो **(सारे)** सार रूप या उत्तम **(दृगज्ञान व्रतादिक)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र **(रत्नत्रय)** आदिक **(भाव)** भाव हैं **(सो)** वह **(धर्म)** धर्म कहलाता है **(जिय)** प्राणी **(जबै)** इनको **(धारै)** धारण करता है **(तब ही)** तब ही **(अचल सुख)** अक्षय मोक्ष सुख **(निहारै)** पाता है।

अर्थ - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप आदि जितने भाव हैं वे सब मोह-भाव से भिन्न हैं क्योंकि ये भाव धर्मरूप हैं। इस धर्म को जब यह जीव धारण करता है तब ही वह शाश्वत-सुख को प्राप्त करता है । ऐसा चिन्तन करना धर्म-भावना है।

मुनि धर्म को सुनने की प्रेरणा

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥15॥

अन्वयार्थ-(सो) ऐसा **(धर्म)** धर्म **(मुनिन करि)** मुनियों के द्वारा **(धरिये)** धारण किया जाता है। **(तिनकी)** उन मुनियों के **(करतूति)** कर्त्तव्यों को **(उचरिये)** अब कहा जाता है **(भवि प्रानी)** हे भव्यजीवों! **(ताको)** उस मुनि के कर्त्तव्य को **(सुनिये)** सुनो और **(अपनी)** अपनी आत्मा के **(अनुभूति)** अनुभव का **(पिछानी)** पहचान करो।

अर्थ - ऐसा जो धर्म है वह पूर्णत: मुनियों के द्वारा धारण किया जाता है । आगे मुनियों की क्रियाओं का वर्णन किया गया है। हे भव्य जीव! तुम उसे सुनो और अपने आत्मानुभव की पहचान करो ।

शिक्षा

पांचवीं ढाल के अध्ययन से हमें सीखना चाहिए कि संसार, शरीर और भोगों की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करके इनसे विरक्त होकर हम अपना कल्याण कर सकते हैं। बारह भावनाओं का चिंतन हमें वैराग्य की ओर ले जाता है। वास्तव में, बारह भावनाओं का चिंतन करना मुनिधर्म प्राप्त करने की भूमिका है। बारह भावना के चिन्तन से मुनिधर्म के प्रति हमारे मन में प्रीति उत्पन्न होती है।

प्रश्न 1. अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं और इनके क्या नाम हैं ?

उत्तर - संसार, शरीर और भोगों आदि की असारता का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा कहलाती है। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म नाम वाली ये अनुप्रेक्षाएँ बारह हैं।

प्रश्न 2. मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो समस्त आरम्भ-परिग्रह के और विषय-भोगों के त्यागी होते हैं, ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं, केशों का लोंच करते हैं और पीछी-कमण्डलु साथ रखते हैं, वे मुनि हैं।

प्रश्न 3. वैराग्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - संसार, शरीर और भोगों से उदासीन होना वैराग्य है।

प्रश्न 4. बारह भावनाओं के चिन्तन का क्या फल है ?

उत्तर - जैसे-वायु के संयोग से अग्नि में वृद्धि होती है, वैसे ही भावनाओं के चिन्तन से वैराग्य दृढ़ होता है जिससे समता में वृद्धि होती है और समता से आत्मिक सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न 5. अनित्य अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ? इसका क्या फल है ?

उत्तर - स्वस्वामी भाव से ग्रहण किये हुए चेतन, अचेतन एवं मिश्र पदार्थ तथा इन्द्रिय आदि के भोग इन्द्रधनुष एवं बिजली के सदृश क्षणभंगुर हैं। ऐसा चिन्तन करना अनित्य भावना है। जैसे विवेकी मनुष्यों को झूठे भोजन में ममत्व नहीं होता, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, धन, वैभव का योग आदि हो जाने पर भी ममत्व नहीं होता, यह इस भावना का फल है।

प्रश्न 6. अशरण भावना का क्या लक्षण है ?

उत्तर - महावन में व्याघ्र से पकड़े हुए हिरण के बच्चे को एवं महासमुद्र में जहाज से छूटे हुए पक्षी को जैसे कोई शरण नहीं है, वैसे ही मरण के समय इन्द्र, चक्रवर्ती, कोटिभट, सहस्रभट, पुत्र एवं स्त्री आदि चेतन पदार्थ तथा पर्वत, किला, भौरा, मणि, मंत्र, तंत्र, औषधि एवं महल आदि अचेतन पदार्थ कोई भी शरण नहीं हैं, ऐसा चिन्तन करना अशरण भावना है।

प्रश्न 7. संसार भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप यह संसार अनंतानंत दु:खों एवं कष्टों से

भरा हुआ है, सारहीन है तथा कहीं भी चैन और सुख नहीं है, ऐसा विचार करना संसार भावना है।

प्रश्न 8. एकत्व भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो अपनी आत्मा है वही सदा अविनाशी, परमहितकारी एवं परमबन्धु है, विनश्वर तथा अहितकारी पुत्र, कलत्र और मित्र आदि बन्धु नहीं हैं अथवा पुण्य और पाप कर्मों के जितने फल हैं, उनको यह जीव अकेला ही भोगता है। स्त्री-पुत्रादि कोई भी नहीं बाँट सकता, ऐसा चिन्तन करना एकत्व भावना है। अपने अकेले पन का चिन्तन करना एकत्व भावना है।

प्रश्न 9. शुभोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – देवपूजा, गुरु उपासना एवं स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्यों में मन, वचन एवं काय की प्रवृत्ति लगाना शुभोपयोग कहलाता है।

प्रश्न 10. अशुभोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – विषय-कषायों की ओर त्रियोग की प्रवृत्ति लगाना अशुभोपयोग कहलाता है।

प्रश्न 11. अन्यत्व भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – संसार की कोई भी वस्तु मेरी नहीं है, दूध-पानी सदृश एकमेक होने वाला शरीर भी मेरा नहीं है, मैं सबसे भिन्न हूँ, ऐसी भावना का चिन्तन करना अन्यत्व भावना है।

प्रश्न 12. एकत्व और अन्यत्व भावना में क्या अन्तर है ?

उत्तर – एकत्व भावना प्रवृत्ति रूप है और अन्यत्व भावना निवृत्ति रूप है। अथवा- एकत्व भावना कार्य रूप है और अन्यत्व भावना कारण रूप है अथवा एकत्व भावना में अकेले पन का और अन्यत्व भावना में भिन्नता का विचार किया जाता है।

प्रश्न 13. अशुचि भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – यह शरीर हड्डी, मांस आदि निंदित वस्तुओं का घर है, नवद्वारों का पिंजरा है, मल-मूत्र आदि अशुचि मलों की उत्पत्ति का स्थान है। केवल इतना ही नहीं अपितु अपने संसर्ग से पवित्र एवं सुगन्धित पदार्थों को भी अपवित्र कर देता है ऐसे अपवित्र शरीर से कैसे स्नेह करूं। ऐसा चिन्तन करना अशुचि भावना है।

प्रश्न 14. आस्रव भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – मन, वचन, काय की चंचलता से जो कर्म आते हैं, उन्हें आस्रव कहते हैं। यह आस्रव आत्मा को दुःख देने वाला है। जैसे रत्नों से भरा छिद्र सहित जहाज भी समुद्र में डूब जाता है, वैसे ही अनन्त गुणों का भण्डार यह आत्मा आस्रवों के कारण संसार समुद्र में डूब रहा है। ऐसा विचार करना आस्रव भावना है।

प्रश्न 15. संवर भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों का आना रुक जाना संवर है, यह आत्मा को सुख देने वाला है। जैसे जिसमें जल आ रहा था वही जहाज छिद्र बन्द हो जाने से जल के न घुसने पर निर्विघ्न पार हो जाता है, वैसे ही यह जीव रूपी जहाज आस्रव रूपी छिद्रों के

बन्द हो जाने से सुख को प्राप्त हो जाता है। ऐसा चिन्तन करना संवर भावना है।

प्रश्न 16. निर्जरा भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों का एकदेश झरना निर्जरा है। इसके दो भेद हैं 1- सविपाक और 2 अविपाक। अपना-अपना समय आने पर कर्मों का फल देकर अलग होना सविपाक निर्जरा है। इससे आत्मा को कोई लाभ नहीं होता। किन्तु तप के द्वारा कर्मों का नष्ट होना अविपाक निर्जरा है। यही निर्जरा मोक्ष-फल देती है, ऐसा चिन्तन करना निर्जरा भावना है ।

प्रश्न 17. लोकानुप्रेक्षा का क्या लक्षण है ?

उत्तर – छह द्रव्यों से परिपूर्ण यह लोक न किसी के द्वारा बनाया गया है न कोई इसकी रक्षा करता है और न कोई इसका नाश करता है। यह लोक अनादिनिधन है। समता के अभाव में जीव संपूर्ण लोक में भ्रमण कर रहा है, ऐसा चिन्तन करना लोकानुप्रेक्षा है।

प्रश्न 18. बोधिदुर्लभ भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर – एकेन्द्रिय, विकलत्रय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, पर्याप्त, नरपर्याय, उत्तम कुल, उत्तम देश, सांगोपांगता, सुन्दर रूप, इन्द्रियों की पूर्णता, कार्यकुशलता, नीरोगता, दीर्घायु, श्रेष्ठ बुद्धि, समीचीन धर्म का सुनना, ग्रहण करना, धारण करना, श्रद्धान करना, संयम, विषय-सुखों से पराङ्मुखता एवं क्रोधादि कषायों से निवृत्ति ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। कदाचित् मिल भी जायें तो भी बोधि और समाधि की प्राप्ति तो अति दुर्लभ है। ऐसा चिन्तन करना बोधिदुर्लभ भावना है।

प्रश्न 19. बोधि और समाधि के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – पहले नहीं प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होना बोधि है तथा इस बोधि को निर्विघ्नता पूर्वक अन्य भव में ले जाना समाधि है।

प्रश्न 20. सम्यग्ज्ञान को अतिदुर्लभ क्यों कहा ?

उत्तर – क्योंकि दिगम्बर मुनिराज ही इसे अपने हृदय में धारण करके मोक्ष पद प्राप्त करते हैं। बिना सम्यग्ज्ञान के तो इस जीव ने अनन्त बार मुनिव्रत धारण कर नवम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया किन्तु मोक्ष प्राप्त नहीं कर सका, इसलिए इसे अतिदुर्लभ कहा है।

प्रश्न 21. ग्रैवेयक कहाँ अवस्थित है और वहाँ कौन जीव जन्म लेता है ?

उत्तर – सोलहवें स्वर्ग के ऊपर और अनुदिश विमानों से नीचे एक के ऊपर एक ऐसे नौ ग्रैवेयक हैं। भावलिंगी सम्यग्दृष्टि साधु प्रथम स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जा सकते हैं, किन्तु कोई भी, जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित दिगम्बर मुद्रा धारण किये बिना सोलहवें स्वर्ग से ऊपर उत्पन्न नहीं हो सकता।

प्रश्न 22. धर्म भावना का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – मोह भाव से रहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ही धर्म है। इस उत्तम धर्म को धारण करने वाला जीव नियम से अविनाशी सुख को प्राप्त करता है। ऐसा चिन्तन करना धर्म भावना है।

छठवीं ढाल

छठवीं ढाल में मुनियों के चारित्र का वर्णन है। पण्डितजी ने उस चारित्र को दो भागों में विभक्त किया है। 1. सकल चारित्र 2. स्वरूपाचरण रूप चारित्र

1. सकल चारित्र-वैराग्यवान् कोई भी सद्गृहस्थ सांसारिक दु:खों से छूटने की इच्छा रखकर सद्गुरुओं के पास जाकर हिंसादि पाँचों पापों का पूर्णतया परित्याग करता है। इन पाँच महाव्रतों के परिकर के रूप में पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, षट्-आवश्यक पालन एवं शेष सात गुणों को भी अंगीकार करता है। यही सब सकल चारित्र है, इसे व्यवहार चारित्र भी कहते हैं।

2. स्वरूपाचरण रूप चारित्र- आत्म-स्वातन्त्र्य की वह परम विशुद्ध दशा है, जहाँ रागादि एवं वर्णादि भाव पृथक् दिखाई देते हैं। गुण-गुणी, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ध्याता-ध्यान-ध्येय, कर्ता-कर्म-करण और क्रिया के समस्त विकल्पों का अभाव हो जाता है। प्रमाण, नय और निक्षेप की सत्ता भिन्न-भिन्न दृष्टिगत नहीं होती। साध्य-साधक, कर्म और उनके फलों से रहित होता हुआ आत्मा शुद्धोपयोग की निश्चल दशा में स्थित हो जाता है। अन्त में, शुक्ल-ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा चार अघातिया कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ढाल के अंत में आत्महित में संलग्न होने का अति उत्तम उपदेश दिया गया है।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य तथा ब्रह्मचर्य महाव्रतों का लक्षण

षट्काय जीव न हननतैं, सबविधि दरव-हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विध शीलधर,चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥1॥

अन्वयार्थ-उन दिगम्बर मुनिराजों के **(षट्काय जीव)** छहकाय के जीवों के **(न हननतैं)** घात नहीं करने से **(सब विधि)** सब प्रकार की **(दरवहिंसा)** द्रव्यहिंसा **(टरी)** दूर हो जाती है और **(रागादिभाव)** राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि भावों के **(निवारतैं)** दूर करने से **(भावित)** भाव **(हिंसा)** हिंसा भी **(न अवतरी)** नहीं होती है। **(जिनके)** उन मुनियों के **(लेश)** थोड़ा-सूक्ष्म भी **(मृषा)** झूठ **(न)** नहीं होता है **(जल)** पानी और **(मृण)** मिट्टी **(हू)** भी **(बिना दीयौ)** बिना दिये हुये **(न)** नहीं **(गहैं)** ग्रहण करते तथा **(अठदशसहस)** अठारह हजार **(विध)** प्रकार के **(शील)** शीलों को **(धर)** धारण कर **(नित)** हमेशा **(चिद्ब्रह्ममें)** चैतन्य रूप आत्मस्वरूप में **(रमि)** लीन **(रहैं)** रहते हैं।

अर्थ - मुनिराज छह-काय के जीवों की हिंसा नहीं करने के कारण सब प्रकार की द्रव्य-हिंसा से दूर रहते हैं। राग-द्वेष आदि भाव नहीं करने से वे भाव-हिंसा से भी दूर हैं, यह अहिंसा महाव्रत है। वे थोड़ा सा भी झूठ नहीं बोलते, यह सत्य महाव्रत है। वे पानी और मिट्टी भी बिना दिया हुआ नहीं लेते, यह अचौर्य महाव्रत है। वे ब्रह्मचर्य के अठारह हजार भेदों का पालन करते हैं और सदा निजात्मा में लीन रहते हैं, यह ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

परिग्रह त्याग महाव्रत, ईर्या और भाषा समिति

अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्यातैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं ॥2॥

अन्वयार्थ-वे मुनि **(चतुर्दस)** चौदह **(भेद)** प्रकार **(अंतर)** अन्तरंग तथा **(दसधा)** दस प्रकार **(बाहर)** बहिरंग **(संग)** परिग्रह से **(टलैं)** रहित होते हैं। **(परमाद)** असावधानता **(तजि)** छोड़कर **(चउ कर)** चार हाथ **(मही)** जमीन **(लखि)** देखकर **(ईर्या)** ईर्या **(समिति तैं)** समिति से **(चलैं)** चलते हैं और **(जिनके)** जिन मुनिराजों के **(मुख-चन्द्रतैं)** मुखरूपी चन्द्रमा से **(जग सुहितकर)** संसार की वास्तविक भलाई करने वाले **(सब अहितहर)** समस्त खराबियों को नष्ट करने वाले **(श्रुति-सुखद)** कानों को प्रिय लगने वाले **(सब संशय)** सभी संदेहों के **(हरैं)** नाशक और **(भ्रमरोग हर)** मिथ्यात्व रूपी रोग को हरने वाले **(वचन)** वचन **(अमृत)** अमृत के समान **(झरैं)** निकलते हैं।

अर्थ - वे मुनि चौदह प्रकार के अंतरंग-परिग्रह और दश प्रकार के बहिरंग परिग्रह से दूर रहते हैं, यह अपरिग्रह महाव्रत है। वे मुनि जीव-रक्षा के विचार से सावधानी पूर्वक चार हाथ आगे की जमीन देखकर चलते हैं, यह ईर्या-समिति है। वे मुनि जगत के कल्याणकारी, सब बुराईयों को नष्ट करने वाले, सुनने में मधुर लगने वाले, सन्देह को दूर करने वाले और मिथ्यात्व रूपी रोग का नाश करने वाले ऐसे वचन बोलते हैं कि मानो मुख रूपी चन्द्रमा से अमृत झर रहा हो, यह भाषा समिति है।

एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापना समिति

छियालीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन पोषते तजि रसन को।
शुचि ज्ञान संजम उपकरन, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन मल-मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥3॥

अन्वयार्थ-दिगम्बर मुनि महाराज **(सुकुल)** उत्तम कुल वाले **(श्रावक तनैं)** श्रावक के **(घर)** घर और **(रसन को)** छहों रस या एक दो आदि रसों को **(तजि)** छोड़कर **(तन)** शरीर को **(नहिं पोषते)** पुष्ट नहीं करते हुये केवल **(तप)** तप के **(बढ़ावन हेतु)** बढ़ाने के लिये **(छियालीस)** आहार के छियालीस **(दोष बिना)** दोषों को टाल कर **(अशन को)** भोजन को **(लैं)** को ग्रहण करते हैं। **(शुचि)** पवित्रता के **(उपकरण)** साधन कमण्डलु को, **(ज्ञान)** ज्ञान के **(उपकरण)** साधन शास्त्र को और **(संजम)** संयम के **(उपकरण)** साधन पीछी को **(लखिकैं)** देख करके **(गहैं)** ग्रहण करते हैं और **(लखिकैं)** देखकर **(धरैं)** रखते हैं तथा **(मूत्र)** पेशाव **(श्लेषम)** खकार आदि **(तनमल)** शरीर के मैल को **(निर्जन्तु)** जीवरहित **(थान)** स्थान **(विलोक)** देखभाल कर **(परिहरैं)** छोड़ते हैं।

अर्थ - वे मुनि छियालीस दोषों को टालकर श्रेष्ठ कुल वाले श्रावक के घर जो आहार ग्रहण करते हैं वह शरीर को पुष्ट करने के लिये नहीं बल्कि तप की वृद्धि के अभिप्राय से रसों का त्याग करके ग्रहण करते हैं, यह एषणा-समिति है। वे शुचिता का उपकरण कमण्डलु, ज्ञान का उपकरण शास्त्र और संयम का उपकरण पिच्छिका को सम्भाल कर उठाते और देखभाल कर रखते हैं, यह आदान-निक्षेपण समिति है। वे जीव-रहित स्थान देखकर सावधानी पूर्वक शरीर के मल, मूत्र, श्लेषम आदि विकारों का विसर्जन करते हैं, यह व्युत्सर्ग या प्रतिष्ठापन-समिति है ।

तीन गुप्तियाँ और पंचेन्द्रिय विजय

सम्यक प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर-मुद्रा देखि मृग-गण, उपल खाज खुजावते॥
रस रूप गंध तथा फरस, अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥4॥

अन्वयार्थ-मुनि महाराज **(सम्यक प्रकार)** भली प्रकार **(मन-वच-काय)** मन, वचन और काय को **(निरोध)** रोक कर जब **(आतम)** अपनी आत्मा का **(ध्यावते)** ध्यान करते हैं तब **(तिन)** उन मुनियों की **(सुथिर)** शांत **(मुद्रा)** आकृति को **(देखि)** देखकर **(उपल)** पत्थर जानकर **(मृगगण)** हिरण या चौपाये **(खाज)** अपनी खुजली को **(खुजावते)** खुजाते हैं। जो **(शुभ)** प्रिय और **(असुहावने)** अप्रिय पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी **(रस)** पाँचों रस **(रूप)** पाँचों वर्ण **(गंध)** दोनों गन्ध **(फरस)** आठ प्रकार के स्पर्श **(अरु)** और **(शब्द)** शब्द हैं **(तिनमें)** उन सब में उनके **(राग विरोध)** राग और द्वेष **(न)** नहीं होता है इसलिए वे **(पंचेन्द्रिय जयन)** पाँचों इन्द्रियों को जीतने वाले अर्थात् जितेन्द्रिय **(पद)** पद को **(पावने)** पाते हैं।

अर्थ - वे मुनि मन, वचन और काय को अच्छी तरह से रोककर जब अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं, उस समय हिरणों का समूह उनकी ध्यानमग्न स्थिर मुद्रा को

देखकर उन्हें पत्थर समझकर उनकी देह से अपने शरीर की खुजली मिटाया करते हैं। यह मुनि की मन-वचन-काय रूप तीन गुप्ति कहलाती हैं। वे मुनि पाँच इन्द्रियों के प्रिय या अप्रिय लगने वाले विषयों में राग-द्वेष नहीं करते। यह मुनिजनों का पंचेन्द्रिय-जय या जितेन्द्रिय-पद प्राप्त करना कहलाता है ।

मुनियों के छह आवश्यक एवं शेष गुण

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं प्रत्याख्यान प्रतिक्रम,तजैं तन अहमेव को॥
जिनके न न्हौन न दंत-धोवन, लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयनि में कछु, शयन एकासन करन ॥5॥

अन्वयार्थ - मुनि महाराज **(नित)** हमेशा **(समता)** सामायिक **(सम्हारैं)** करते हैं **(थुति)** स्तुति **(उचारैं)** बोलते हैं **(जिनदेव को)** भगवान् जिनेन्द्र देव को **(वंदना)** प्रणाम करते हैं **(प्रत्याख्यान)** प्रत्याख्यान **(करैं)** करते हैं **(प्रतिक्रम)** प्रतिक्रमण **(करैं)** करते हैं **(तन)** शरीर से **(अहमेव को)** ममता को **(तजैं)** छोड़ते हैं **(जिनके)** जिन मुनियों के **(न्हौन)** स्नान और **(दंतधोवन)** दांतों का धोना **(न)** नहीं होता है **(आवरन)** शरीर को ढाकने वाला **(अंबर)** कपड़ा **(लेश)** लेशमात्र भी **(न)** नहीं होता है और **(पिछली रयनि में)** रात्रि के पिछले भाग में **(भूमाहिं)** पृथ्वी पर **(एकासन)** एक करवट से **(कछु)** थोड़ा **(शयन)** शयन **(करन)** करते हैं।

अर्थ - वे मुनि नित्य सामायिक करते हैं अर्थात् सब जीवों में समता-भाव रखते हैं। भगवान् की स्तुति करते हैं । जिनेन्द्र देव की वन्दना करते हैं। प्रत्याख्यान करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं और शरीर से ममत्व का भाव छोड़कर कायोत्सर्ग करते हैं, ये छह आवश्यक कहलाते हैं। वे मुनि स्नान नहीं करते हैं। न दांत धोते हैं। जरा सा भी वस्त्र शरीर पर नहीं ढकते हैं, रात्रि में भूमि पर एक-आसन से थोड़ी-सी नींद लेते हैं।

मुनियों के शेष गुण तथा रागद्वेष का अभाव

इक बार दिनमें लैं अहार, खड़े अलप निज पानमें।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यान में॥
अरि मित्र महल मसान कंचन कांच निंदन थुति करन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन ॥6॥

अन्वयार्थ- मुनि महाराज **(दिनमें)** दिन में **(इक बार)** एक बार **(खड़े)** खड़े होकर **(अलप)** थोड़ा सा तथा **(निज पानमें)** अपने हाथ पर रख **(अहार)** भोजन **(लैं)** लेते हैं **(कचलोंच)** केशलोंच **(करत)** करते हैं **(निजध्यान में)** अपने आत्मा के ध्यान में **(लगे)** तत्पर होते हुए **(परिषह सों)** बाईस प्रकार के परीषहों से **(न डरत)** नहीं डरते हैं तथा **(अरि)** शत्रु **(मित्र)** मित्र **(महल)** हवेली

(मसान) श्मशान **(कंचन)** स्वर्ण **(कांच)** कांच **(निंदन)** निंदा करने वाले **(थुतिकरन)** स्तुति करने वाले **(अर्घावतारन)** पूजा करने वाले और **(असि प्रहारन में)** तलवार के चलाने वाले में **(सदा)** हमेशा **(समता)** समताभाव **(धरन)** धारण करते हैं।

अर्थ - वे मुनि दिन में एक ही बार अपने हाथ की अंजुली में खड़े-खड़े थोड़ा सा आहार लेते हैं। वे अपने बालों को अपने हाथ से उखाड़ कर अलग करते हैं। यह उनके सात शेष गुण हैं। इस तरह मुनिराज अट्ठाइस मूलगुणों का पालन करते हैं। वे परीषह सहन करने में डरते नहीं और अपने आत्म-ध्यान में लीन रहते हैं। वे शत्रु और मित्र, महल और श्मशान, स्वर्ण और काँच, निन्दा और प्रशंसा, पूजा करने या तलवार से मारने में सदा समता रखते हैं अर्थात् शान्त रहा करते हैं ।

मुनियों का तप धर्म, विहार तथा स्वरूपाचरण रूप चारित्र

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रतन-त्रय सेवैं सदा।
मुनि-साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भव-सुख कदा॥
यों है सकलसंजमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृति सब ॥7॥

अन्वयार्थ-मुनि महाराज हमेशा **(द्वादश)** बारह **(तप)** तपों को **(तपैं)** तपते हैं **(दश)** दस **(वृष)** धर्मों को **(धरैं)** धारण करते हैं और **(रतनत्रय)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को **(सदा)** हमेशा **(सेवैं)** सेवन करते हैं **(मुनि साथ में)** मुनियों के संघ में **(वा)** अथवा **(एक)** अकेले **(विचरैं)** विहार करते हैं और **(कदा)** कभी भी **(भवसुख)** संसार के सुखों को **(नहिं चहैं)** नहीं चाहते हैं। **(यों)** इस प्रकार **(सकलसंजम चरित)** सकलसंयम चारित्र **(है)** है **(अब)** अब **(स्वरूपाचरन)** स्वरूपाचरण चारित्र को **(सुनिये)** सुनो **(जिस)** जिस स्वरूपाचरण चारित्र के **(होत)** प्रकट होने पर **(आपनी)** अपने आत्मा की **(निधि)** ज्ञानादिक संपत्ति **(प्रगटै)** प्रकट होती है तथा **(परकी)** पर वस्तुओं से **(सब)** सब प्रकार की **(प्रवृति)** प्रवृत्ति **(मिटै)** मिट जाती है।

अर्थ - वे मुनि बारह-प्रकार के तप तपतें हैं, दश प्रकार के धर्म को धारण करते हैं, सदा रत्नत्रय का पालन करते हैं, दूसरे मुनियों के साथ में या स्वयं एकाकी विचरण करते हैं और सांसारिक-सुखों की इच्छा नहीं करते हैं । इस प्रकार मुनि के सकल-चारित्र का वर्णन हुआ। अब स्वरूपाचरण रूप चारित्र को कहते हैं जिससे अपनी आत्मा की ज्ञानादि सम्पत्ति प्रकट होती है और पर-पदार्थों में सब प्रकार की प्रवृत्ति मिट जाती है अर्थात् भौतिक जगत की ओर झुकाव मिट जाता है ।

स्वरूपाचरण रूप चारित्र

जिन परमपैनी सुबुधि-छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज-भाव को न्यारा किया।।
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो ॥8॥

अन्वयार्थ-**(जिन)** जो वीतराग मुनिराज **(परम)** अत्यन्त **(पैनी)** तीक्ष्ण **(सुबुधि)** सम्यग्ज्ञान या भेदविज्ञान रूपी **(छैनी)** छैनी को **(डारि)** डाल कर **(अंतर)** अन्तरंग में **(भेदिया)** भेद कर **(निज भाव को)** आत्मा के वास्तविक स्वरूप को **(वरणादि)** वर्ण, रस, गंध तथा स्पर्श रूप द्रव्य कर्म से **(अरु)** और **(रागादितैं)** राग, द्वेष आदि रूप भावकर्म से **(न्यारा किया)** अलग कर लेते हैं। अतएव **(निज माहिं)** अपने आत्मा में **(निज के हेतु)** आत्मा के लिये **(निजकर)** आत्मा के द्वारा **(आपको)** आत्मा को **(आपै)** अपने आप **(गह्यो)** ग्रहण करते हैं तब **(गुण)** गुण **(गुणी)** गुणी **(ज्ञाता)** ज्ञाता **(ज्ञेय)** ज्ञान के विषय और **(ज्ञान)** ज्ञान **(मँझार)** में **(कछु)** थोड़ा भी **(भेद)** अन्तर **(न)** नहीं **(रह्यो)** रहता है।

अर्थ - जिन मुनिराज ने अत्यन्त तेज/सूक्ष्म धार वाली भेद-विज्ञान रूपी छैनी के द्वारा अंतरंग में पड़े अज्ञान के आवरण को तोड़ दिया है और शरीर के वर्ण आदि गुणों एवं राग, द्वेष आदि कषाय-भावों से अपने आत्म-स्वरूप को पृथक् कर लिया है वे मुनि अपनी आत्मा में, अपने आत्महित के लिये, अपनी आत्मा के द्वारा, अपनी आत्मा को, आप ही ग्रहण करते हैं तब गुण-गुणी, ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय इन सबमें कुछ भेद नहीं रह जाता अर्थात् आत्मध्यान में उनके सब विकल्प मिट जाते हैं ।

स्वरूपाचरण रूप चारित्र

जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये तीनधा एकै लसा ॥9॥

अन्वयार्थ-**(जहाँ)** जिस स्वरूपाचरण चारित्र में **(ध्यान)** ध्यान **(ध्याता)** ध्याता और **(ध्येय को)** ध्येय का **(विकल्प)** अंतर **(न)** नहीं होता और **(जहाँ)** जहाँ **(वच)** वचन का **(भेद न)** विकल्प नहीं होता **(तहाँ)** वहाँ पर तो **(चिद्भाव)** आत्मा का स्वभाव ही **(कर्म)** कर्म **(चिदेश)** आत्मा ही **(करता)** कर्ता **(चेतना)** चेतना युक्त आत्मा ही **(किरिया)** क्रिया हो जाता है, अर्थात् **(तीनों)** ये तीनों कर्ता, कर्म और क्रिया **(अभिन्न)** भेद रहित एक **(अखिन्न)** परस्पर बाधारहित हो जाते

हैं **(शुध उपयोग की)** शुद्धोपयोग की **(निश्चल)** अटल **(दसा)** हालत होती है और **(जहाँ)** जिसमें **(दृगज्ञानव्रत)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र **(ये तीनधा)** ये तीनों **(एकै)** एकरूप **(लसा)** शोभायमान होते हैं।

अर्थ - जिस आत्म-ध्यान की अवस्था में ध्यान,ध्याता और ध्येय का कोई भेद नहीं रह गया है और न वचन का विकल्प है। वहाँ चेतना ही कर्म,चेतना ही कर्ता और चेतना ही क्रिया है। ये तीनों अर्थात् कर्म,कर्ता एवं क्रिया एक और परस्पर बाधा-रहित हो गए हैं यह शुद्धोपयोग की स्थिर अवस्था है। जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन होते हुए भी एक होकर शोभायमान होते हैं।

स्वरूपाचरण रूप चारित्र और निर्विकल्प ध्यान

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चितपिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुण करण्ड च्युत पुनि कलनितैं ॥10॥

अन्वयार्थ-उस स्वरूपाचरण चारित्र के समय मुनियों के **(अनुभव में)** आत्मानुभव में **(परमाण)** प्रमाण का **(नय)** नय का और **(निक्षेप को)** निक्षेप का **(उद्योत)** प्रकाश **(न)** नहीं **(दिखै)** दिखता है किन्तु ऐसा विचार होता है कि मैं **(सदा)** हमेशा **(दृग-ज्ञान-सुख-बल-मय)** अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य सहित हूँ **(मो विखै)** मुझमें **(आन)** दूसरा रागद्वेषादिक **(भाव)** भाव **(नहिं)** नहीं है। **(मैं)** मैं **(साध्य)** साध्य [आत्म विशुद्धि रूप] **(साधक)** साधक [आत्मविशुद्धि करने वाला] तथा **(कर्म)** कर्म **(अरु)** और **(तसु)** उसके **(फलनितैं)** फलों से **(अबाधक)** बाधारहित **(चितपिण्ड)** ज्ञान दर्शन चेतना का समूह **(चण्ड)** निर्मल एवं ऐश्वर्यशाली **(अखण्ड)** द्वितीय भेदरहित **(सुगुणकरण्ड)** अच्छे-अच्छे गुणों का भंडार **(पुनि)** और **(कलनितैं)** पापों या कर्मों से **(च्युत)** रहित हूँ।

अर्थ - आत्म-ध्यान की इस अवस्था में प्रमाण, नय और निक्षेप का प्रकाश अनुभव में नहीं आता,उस समय आत्मा में यही विचार आता है कि मैं दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य रूप हूँ इसके सिवाय मुझमें कोई दूसरा भाव नहीं है। मैं ही साध्य हूँ,मैं ही साधक हूँ, कोई कर्म या उसका फल मेरे कार्य में किसी प्रकार बाधा नहीं दे सकता है। मैं चैतन्य पिण्ड हूँ, तेजस्वी अखण्ड उत्तम गुणों का पिटारा हूँ तथा सब पापों से पृथक् हूँ।

स्वरूपाचरण रूप चारित्र का महत्त्व और अरिहन्त अवस्था

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो॥
तब ही शुकलध्यानाग्निकरि, चउ-घातिविधि-कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥11॥

अन्वयार्थ-स्वरूपाचरण चारित्र में **(यों)** इस प्रकार **(चिन्त्य)** विचार कर **(निज में)** आत्म स्वरूप में **(थिर भये)** लीन होने पर **(तिन)** उन मुनिराजों के **(जो)** जो **(अकथ)** अकथनीय **(आनंद)** आनंद **(लह्यो)** प्राप्त होता है (**सो)** वह आनंद **(इन्द्र)** इन्द्र के **(नाग)** नागेन्द्र या धरणेन्द्र के **(नरेन्द्र)** राजा के **(वा)** और **(अहमिन्द्र के)** अहमिन्द्र के **(नाहीं कह्यो)** नहीं बतलाया गया है **(तब ही)** उस स्वरूपाचरण चारित्र के प्रकट होने पर ही **(शुकलध्यानाग्निकरि)** शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा **(चउघाति विधि कानन)** चार घातिया कर्म रूपी जंगल **(दह्यो)** जलाया जाता है तब **(केवलज्ञान करि)** केवलज्ञान से **(सब)** तीनों लोकों और तीनों कालों में होने वाले सब पदार्थों के गुण और पर्यायों को **(लख्यो)** जाना जाता है और तभी **(भविलोक को)** संसार के भव्य जीवों को **(शिवमग)** मोक्षमार्ग **(कह्यो)** बतलाया जाता है।

अर्थ - इस प्रकार विचार कर जब मुनि आत्म-ध्यान में लीन हो जाते हैं तब उन्हें जो आनन्द प्राप्त होता है वह वचनातीत है वैसा सुख इन्द्र,नागेन्द्र,चक्रवर्ती या अहमिन्द्र को भी नहीं मिलता है। उस समय मुनिराज शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्म रूपी वन को जला देते हैं और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है जिस ज्ञान के द्वारा वे तीनों काल की सब बातों को स्पष्ट रूप से जानते हैं और भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। यह उनकी अरिहन्त अवस्था कहलाती है।

सिद्ध अवस्था

पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिनमाहिं अष्टम-भू वसैं।
वसुकर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं॥
संसार खार अपार पारावार, तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥12॥

अन्वयार्थ-(**पुनि**) अरिहंत अवस्था या केवलज्ञान होने के बाद **(शेष)** बाकी बचे हुये चार **(अघातिविधि)** अघातिया कर्मों को **(घाति)** नाश करके **(छिनमाहिं)** थोड़े समय में **(अष्टम भू)** आठवीं पृथ्वी-ईषत्प्राग्भार-मोक्ष में **(वसैं)** निवास करने लगते हैं, वहाँ पर, उनके **(वसु)** आठ **(कर्म)** कर्मों के **(विनसै)** नाश होने से **(सम्यक्त्व आदिक)** सम्यक्त्व आदि **(सब)** सभी **(वसु सुगुण)** आठ प्रधान गुण **(लसैं)** शोभायमान होने लगते हैं ऐसे जीव **(संसार खार अपार पारावार)** संसार

रूपी खारे और अगाध समुद्र को **(तरि)** पार कर **(तीरहिं)** दूसरे किनारे को **(गये)** प्राप्त हो जाते हैं और **(अविकार)** विकाररहित **(अकल)** शरीर रहित **(अरूप)** रूपरहित **(शुचि)** शुद्ध-निर्दोष **(चिदूप)** दर्शनज्ञान चेतना स्वरूप तथा **(अविनाशी)** नित्य **(भये)** हो जाते हैं।

अर्थ - वे शेष चार अघातिया कर्मों को भी क्षणभर में नष्ट करके मोक्ष को चले जाते हैं। आठ कर्मों के नष्ट होने से उनमें सम्यक्त्व आदि आठ गुण शोभायमान होने लगते हैं। वे संसार रूपी खारे और अपार समुद्र को पार करके किनारे पर पहुँच जाते हैं और निर्विकार, शरीर रहित, शुद्ध, चैतन्यमय, अविनाशी सिद्ध-अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

सिद्ध अवस्था

निजमाहिं लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्तकाल, यथा तथा शिव परणये॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नर-भव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच, प्रकार तजि वर सुख लिया ॥13॥

अन्वयार्थ-(निज माहिं) उन सिद्ध भगवान् की आत्मा में **(लोक अलोक)** लोक और अलोक के **(गुण परजाय)** गुण और पर्याय **(प्रतिबिम्बित थये)** झलकने लगते हैं। वे **(यथा)** जैसे **(शिव)** मोक्ष **(परणये)** गये हैं **(तथा)** उसी प्रकार **(अनन्तानन्त-काल)** अनन्तानन्त काल तक **(रहिहैं)** रहेंगे। **(जे)** जिन **(जीव)** जीवों ने **(नरभव)** मनुष्य की पर्याय **(पाय)** पा करके **(यह)** यह मुनिपद आदि की प्राप्ति रूप **(कारज)** कार्य **(किया)** किया है वे जीव **(धनि धन्य हैं)** अत्यन्त प्रशंसा के पात्र हैं और **(तिनही)** ऐसे ही जीवों ने **(अनादि)** अनादि काल से चले आये **(पंच प्रकार)** पाँच परिवर्तन रूप **(भ्रमण)** संसार भ्रमण को **(तजि)** त्याग कर **(वर)** उत्तम **(सुख)** सुख **(लिया)** पाया है।

अर्थ - सिद्ध भगवान् की आत्मा में लोक और अलोक अपने गुण व पर्याय सहित प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। उन्होंने जिस प्रकार सर्व सुखकारी मोक्ष पाया है उसी प्रकार वे अनन्तकाल तक वहाँ रहेंगे। वे जीव धन्य हैं जिन्होंने मनुष्य-भव पाकर मोक्ष प्राप्ति का कार्य किया है। ऐसे ही जीवों ने अनादिकाल से चले आ रहे पंच परावर्तन रूप संसार को त्याग कर उत्तम सुख की प्राप्ति की है।

रत्नत्रय का फल

मुखयोपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्राय धरैं।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल-जग-मल हरैं॥

इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै तबलौं झटिति निज हित करौ ॥14॥

अन्वयार्थ-जो **(बड़भागि)** महाभाग्यशाली प्राणी **(यों)** इस प्रकार **(मुख्योपचार)** निश्चय और व्यवहार **(दुभेद)** दो प्रकार के **(रत्नत्रय)** रत्नत्रय को **(धरैं)** धारण करते हैं **(अरु)** और **(धरैंगे)** धारण करेंगे **(ते)** वे **(शिव)** मोक्ष **(लहैं)** पाते हैं तथा पावेंगे। और **(तिन)** उनका **(सुयशजल)** सुकीर्तिरूपी जल **(जग-मल)** संसार रूपी मैल को **(हरैं)** नष्ट करता है और करेगा **(इमि)** ऐसा **(जानि)** जान कर **(आलस)** प्रमाद **(हानि)** छोड़कर **(साहस)** हिम्मत **(ठानि)** करके **(यह)** यह **(सिख)** शिक्षा **(आदरौ)** ग्रहण करो कि **(जबलौं)** जब तक **(रोग जरा)** रोग और बुढ़ापा **(न गहै)** नहीं घेरता है **(तबलौं)** तब तक **(झटिति)** जल्दी **(निजहित)** आत्मा की भलाई **(करौ)** कर लेना चाहिए।

अर्थ - निश्चय और व्यवहार रूप रत्नत्रय को जो भाग्यशाली जीव धारण करते हैं और आगे धारण करेंगे,वे सभी मोक्ष प्राप्त करेंगे। उनका सुयश रूपी जल संसार के मैल को हरण करने वाला है। ऐसा जानकर आलस्य को छोड़ो और साहस करके यह सदुपदेश ग्रहण करो कि जब तक रोग या बुढ़ापा इस शरीर को नहीं घेरता तब तक जल्दी से अपना आत्म-कल्याण कर लेना चाहिए।

अन्तिम शिक्षा और आत्म कर्त्तव्य

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥15॥

अन्वयार्थ-(यह) यह **(राग आग)** राग रूपी अग्नि, जीव को **(सदा)** अनादिकाल से हमेशा **(दहै)** जला रही है **(तातैं)** इसलिए **(समामृत)** समता रूपी अमृत **(सेइये)** पीना चाहिए **(विषय-कषाय)** विषय कषायों को **(चिर भजे)** अनादि काल से सेवन किया है, **(अब तो)** अब उनका **(त्याग)** त्याग कर **(निजपद)** आत्मस्वरूप को **(बेइये)** पहचानना या प्राप्त करना चाहिए। **(पर पद में)** दूसरी वस्तुओं में **(कहा)** क्यों? **(रच्यो)** लीन है **(यहै)** यह **(तेरो)** तेरा **(पद)** पद **(न)** नहीं है। तू **(दुख)** दुःख **(क्यों)** क्यों **(सहै)** सहता है **(दौल)** हे दौलतराम! **(अब)** अब **(स्वपद)** निजात्मा में **(रचि)** लगकर **(सुखी)** सुख को प्राप्त **(होउ)** होओ **(यहै)** यह **(दाव)** मौका **(मत चूकौ)** नहीं खो।

अर्थ - इस संसार में जीवों को रागरूपी आग सदा से जला रही है इसलिए समता रूपी अमृत को सेवन करना चाहिए। हे भव्य जीव ! तुमने सदा विषय-कषायों

का सेवन किया है और दु:ख उठाया है, अब इनको छोड़कर अपना आत्म-पद प्राप्त करो। पर-वस्तु में क्यों लुभा रहे हो ? वह निज पद नहीं है फिर तुम इसे अपना मानकर क्यों दु:ख सह रहे हो! यहाँ दौलतराम जी स्वयं को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि हे दौलतराम ! अब अपना मानकर अपने निजात्मा में लीन हो और इस दुर्लभ अमूल्य अवसर को मत खो।

ग्रन्थ कर्ता की भावना

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज सुकल बैसाख।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥1॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥2॥

अन्वयार्थ-(इक) एक **(वसु)** आठ **(नव)** नौ **(इक)** एक **(वर्ष की)** संवत् की **(वैसाख)** वैशाख **(सुकल)** शुक्ल **(तीज)** तीज को **(बुधजन)** बुधजन कवि के **(भाख)** कथन को **(लखि)** देखकर **(यह)** यह **(तत्त्वउपदेश)** तत्त्वोपदेश **(करयो)** किया **(लघु-धी)** अल्पबुद्धि **(तथा)** और **(प्रमाद तैं)** प्रमाद से **(शब्द)** शब्द की **(अर्थ)** अर्थ की **(भूल)** भूल हो तो **(सुधी)** हे समझदारों! **(सुधार)** सुधार कर **(पढ़ो)** पढ़ो **(जो)** तो **(भवकूल)** संसार सागर के तट को **(पावो)** प्राप्त करोगे।

अर्थ - पं. दौलतराम जी ने पं. बुधजन जी के द्वारा रचित छहढाला के आधार पर यह तत्त्व-उपदेश संवत् 1891 की वैशाख शुक्ल तृतीया को पूर्ण किया। पं.जी कहते हैं कि अपनी अल्प-बुद्धि तथा प्रमाद के कारण यदि कहीं शब्द या अर्थ की भूल हुई हो तो उसे विद्वान् लोग सुधारकर पढ़ लें। इसे पढ़कर जीव संसार का किनारा पा सकता है।

शिक्षा

इस छठवीं ढाल के अध्ययन से हमें दो बातें सीख लेना चाहिए-

पहली बात इस संसार के आवागमन से बचने के लिए हमें वीतरागी मुनि बनने की भावना सदा हृदय में रखना चाहिए और मुनिव्रत धारण करने का साहस करना चाहिए। दूसरी बात आत्मध्यान में लीन होने पर सच्चा आत्मसुख प्राप्त होता है इसलिए श्रद्धापूर्वक आत्मध्यान करने का अभ्यास करना चाहिए। विषय-कषायों का सेवन सदा से करते आए हैं उससे मन हटाकर आत्मकल्याण के लिये समय निकालना चाहिए। अवसर नहीं खोना चाहिए।

प्रश्न 1. महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर - नव (मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना = 9) प्रकार से हिंसादि पाँचों पापों का सर्वथा त्याग करना महाव्रत है ।

प्रश्न 2. चौबीस प्रकार के परिग्रह कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - परिग्रह के मुख्य दो भेद हैं :-आभ्यन्तर और बहिरंग। आभ्यन्तर परिग्रह चौदह प्रकार का है-मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद। बाह्य परिग्रह इस प्रकार का है-क्षेत्र (खेत), वास्तु (मकान), हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, दो पाये (स्त्री, दास, दासी आदि), चौपाये (पशु, गाय, बैल आदि) वस्त्र और बर्तन।

प्रश्न 3. छियालीस दोष कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - दाता के आश्रित 16 उद्गम दोष, पात्र के आश्रित 16 उत्पादन दोष तथा आहार सम्बन्धी 10 और भोजन क्रिया सम्बन्धी 4 -ऐसे कुल 46 दोष हैं।

प्रश्न 4. समिति और गुप्ति में क्या अन्तर है ?

उत्तर - यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति का नाम समिति है और मन, वचन एवं काय की प्रवृत्ति की निवृत्ति का नाम गुप्ति है ।

प्रश्न 5. गुप्तियाँ कितनी हैं और उनके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर - मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति के भेद से गुप्तियाँ तीन हैं। आत्मध्यान पूर्वक मन को वश में रखना मनोगुप्ति है। वचन को वश में रखना वचनगुप्ति है और काय की क्रियाओं को रोकना काय गुप्ति है।

प्रश्न 6. परिग्रह त्याग महाव्रत में ही वस्त्रों का त्याग गर्भित है, फिर वस्त्र-त्याग मूलगुण भिन्न क्यों कहा गया है ?

उत्तर - पुलाक आदि भावलिंगी साधुओं के किंचित् कदाचित् मूलगुण स्वरूप परिग्रह आदि महाव्रतों में कुछ विराधना हो जाने पर भी वे गुणस्थान से च्युत नहीं होते किन्तु वस्त्र त्याग मूलगुण की तो आंशिक विराधना भी साधु को नीचे लाकर खड़ा कर देगी, इसी बात को ध्वनित करने हेतु वस्त्र त्याग मूलगुण पृथक् रखा गया है।

प्रश्न 7. आवश्यक किसे कहते हैं ?

उत्तर - आधि (मानसिक पीड़ा), व्याधि (शारीरिक पीड़ा) आदि से ग्रस्त हो जाने पर भी उनके एवं इन्द्रियों के वशीभूत न होकर जो दिन और रात्रि के आवश्यक कार्य साधुओं को करने ही चाहिए,उन कार्यों को आवश्यक कहते हैं।

प्रश्न 8. स्तव, वन्दना और प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - चौबीस तीर्थंकरों की समूह रूप से स्तुति करना स्तव है। एक-एक तीर्थंकर की या एक ही तीर्थंकर की स्तुति करना वन्दना है। मेरे अपराध मिथ्या हों, इस

प्रकार लगे हुए दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण है।

प्रश्न 9. परीषह कितने होते हैं ?

उत्तर – क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल, नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार, अलाभ, अदर्शन, प्रज्ञा और अज्ञान ये बाईस परीषह हैं।

प्रश्न 10. गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – **गुण**–द्रव्य की प्रत्येक अवस्था में जो अन्वय रूप से रहता है, उसे गुण कहते हैं। जैसे जीव द्रव्य का ज्ञान गुण। **गुणी**–गुण के आधार स्वरूप द्रव्य को गुणी कहते हैं। जैसे आत्मा अर्थात् अनेक गुणों का भण्डार आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका गुण है। **ज्ञाता**–जो जानता है, उसे ज्ञाता कहते हैं। **ज्ञान**–जिसके द्वारा जाना जाता है, वह ज्ञान है। **ज्ञेय**–जानने योग्य पदार्थ ज्ञेय हैं।

प्रश्न 11. शुद्धोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – शुभाशुभ रागद्वेषादि से रहित आत्मा की शुद्ध परिणति को शुद्धोपयोग कहते हैं।

प्रश्न 12. ध्यान, ध्याता और ध्येय किसे कहते हैं ?

उत्तर – **ध्यान**–किसी एक द्रव्य पर चित्त का स्थिर होना ध्यान है। **ध्याता**–ध्यान करने वाले को ध्याता कहते हैं। **ध्येय**–ध्यान करने योग्य पदार्थ को ध्येय कहते हैं।

प्रश्न 13. चिदेशरूप कर्ता, चिद्भावरूप कर्म और चेतनारूप क्रिया का क्या भाव है ?

उत्तर – **चिदेशरूप कर्ता**–कार्य करने वाले को कर्ता कहते हैं। जहाँ जानने-देखने वाला एक आत्मा ही है, अत: आत्मा ही चिदेशरूप कर्ता है। **चिद्भाव रूपकर्म**–कर्ता के द्वारा स्वतन्त्र रूप से जो किया जाता है वह उसका कर्म है। यहाँ चिदात्मा के द्वारा किया हुआ चित् भाव ही आत्मा का कर्म है। **चेतनारूप क्रिया**–चैतन्य का चैतन्य रूप से परिणमन होना चेतना रूप क्रिया है। जैसे अग्नि की उष्णता अग्नि से अभिन्न है उसी प्रकार चिदेश, चिद्भाव और चेतना ये तीनों अभिन्न हैं।

प्रश्न 14. प्रमाण, नय, निक्षेप के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – वस्तु के सर्वांशों को जानने वाले ज्ञान को **प्रमाण** कहते हैं। वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान को **नय** कहते हैं। नय ज्ञान द्वारा बाधा रहित जाने हुए पदार्थों में प्रसंगवशात् नामादि की स्थापना करना **निक्षेप** है।

प्रश्न 15. अरिहंत परमेष्ठी के मुख्य गुण कौन-कौन हैं, और ये गुण उपर्युक्त छन्द में किस-किस पद से जाने जा सकते हैं ?

उत्तर – अरिहन्त परमेष्ठी के मुख्य गुण तीन हैं। वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी। छन्द के ''चउघाती विधि, कानन दह्यो'' पद से वीतराग गुण का, ''सब लख्यो केवलज्ञान कर'' पद से सर्वज्ञ गुण का और ''भविलोक को शिवमग कह्यो'' पद से हितोपदेशी गुण का द्योतन होता है।

प्रश्न 16. आत्म स्वभाव में स्थिर होने वाले मुनिराजों का आनन्द (सुख) अहमिन्द्रों के सुख से अधिक क्यों हैं ?

उत्तर – देवेन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र और अहमिन्द्रों का सुख इन्द्रियों एवं उनके विषयों के माध्यम से उत्पन्न होने वाला सुख है और आत्मलीन मुनिराजों का सुख स्व-शुद्ध आत्मा से उत्पन्न सुख है। अत: वह अन्य सुखों से अनन्त गुणा श्रेष्ठ और अनुपम है।

प्रश्न 17. अघातिया कर्म किसे कहते हैं और वे कौन-कौन से हैं ?

उत्तर – जो कर्म जीव के अनुजीवी गुणों का घात नहीं करते हैं, वे अघातिया कर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिया कर्म हैं।

प्रश्न 18. किस कर्म के नाश से कौन सा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर – ज्ञानावरण कर्म के अभाव से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्म के अभाव से अनन्तदर्शन, वेदनीय कर्म के अभाव से अव्याबाधत्व, मोहनीय कर्म के अभाव से अनन्तसुख (सम्यक्त्व),आयु कर्म के अभाव से अवगाहनत्व, नामकर्म के अभाव से सूक्ष्मत्व, गोत्र कर्म के अभाव से अगुरुलघुत्व और अन्तराय कर्म के अभाव से अनन्तवीर्य गुण प्रकट होता है।

प्रश्न 19. पंच भ्रमण का क्या अर्थ है ?

उत्तर – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये पाँच परिवर्तन हैं। जीव अनादिकाल से इन परिवर्तनों को पूर्ण करता हुआ भ्रमण कर रहा है, यही पंच भ्रमण का अर्थ है।

प्रश्न 20. आत्मा में सम्पूर्ण द्रव्य उनके गुण एवं पर्यायें कैसे प्रतिबिम्बित होते हैं ?

उत्तर – आत्म स्थित केवलज्ञान में स्वच्छ, निर्मल दर्पण के सदृश सम्पूर्ण द्रव्य अपने गुण एवं पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि केवलज्ञान में दर्पण की तरह छाया और आकृति नहीं पड़ती।

प्रश्न 21. पुण्य तो हेय है, फिर यहाँ निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय का पात्र पुण्यवान ही होता है, ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर – पुण्य हेय नहीं है, पुण्य की वांछा हेय है। रत्नत्रय धारण करने योग्य उत्तम शरीर आदि के साधन एवं परिणामों की निर्मलता का योग पुण्य से ही प्राप्त होता है। अत: भाग्यशाली को ही मोक्ष का पात्र कहा है।

प्रश्न 22. जीव का निज-पद कौन सा है ?

उत्तर – जहाँ आत्मा द्रव्य और भाव दोनों से शुद्ध है, अपने स्वभाविक अनंत ज्ञान-दर्शन रस के समूह से स्थायीपने को प्राप्त है, अन्य सब पर द्रव्यों से भिन्न और निज स्वभाव से अभिन्न है, यही पद जीव का निजपद है।

मूलपाठ

पहली ढाल

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं ॥

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त ।
तातैं दुखहारि सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥1 ॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान ।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥2 ॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री-तन धार ॥3 ॥
एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुख भार ।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥4 ॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी ।
लट पिपीलि अलि आदि शरीर, धरधर मर्‌यो सही बहुपीर ॥5 ॥
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल-पशु हति खाये भूर ॥6 ॥
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनिकरि खायो अतिदीन ।
छेदन भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास ॥ 7 ॥
बध-बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने ।
अति संक्लेश-भावतैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो ॥ 8 ॥
तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसै नहिं तिसो ।
तहाँ राधश्रोणित-वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह-दाहिनी ॥9 ॥
सेमर-तरु- दल जुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र ।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥10 ॥
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिडावै दुष्ट प्रचण्ड ।
सिन्धु-नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ।।11 ॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय ।
ये दुख बहु सागरलौं सहै, करम जोगतैं नरगति लहै ॥12 ॥
जननी उदर बस्यो नवमास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास ।

निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥13 ॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो ।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनों कैसे रूप लखै आपनो ॥14 ॥
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर-तन धरै ।
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥15 ॥
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय ।
तहँ ते चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥16 ॥

दूसरी ढाल

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण ।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥1 ॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिनमाँहि विपर्ययत्व ।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरति चिनमूरति अनूप ॥2 ॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव-चाल ।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान ।।3 ॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥4 ॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट ये दुख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥5 ॥
शुभ-अशुभ-बन्ध के फल मँझार, रति अरति करै निजपद विसार ।
आतम-हित-हेतु विराग-ज्ञान, ते लखै आपको कष्ट दान ॥6 ॥
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय ।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुख-दायक अज्ञान जान ॥7 ॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानहु मिथ्याचरित्र ।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥8 ॥
जे कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शनमोह एव ।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥9 ॥
धारैं कुलिंग लहि महत-भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल-नाव ।
जे रागद्वेष-मल करि मलीन, वनिता-गदादिजुत चिह्न चीन ॥10 ॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण-छेव ।
रागादि-भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरण-खेत ॥11 ॥

जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥12॥
एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि रचित श्रुतको अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥13॥
जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञान-हीन, जे जे करनी तन करन-छीन ॥14॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित-पंथ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग।।15॥

तीसरी ढाल

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन - ज्ञान -चरन शिवमग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥1॥
परद्रव्यनितैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो, सो सम्यग्ज्ञान कला है ॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यकचारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥2॥
जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्धरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों को त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुनि सामान्य-विशेषै, दिढ़ प्रतीति उर आनौ ॥3॥
बहिरातम, अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै बहिरातम -तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर-आतम-ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥4॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी ॥
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरिहन्त सकल परमातम, लोकालोक-निहारी ॥5॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित, सिद्ध महन्ता।

ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ॥6॥
चेतनता बिन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसु जाके हैं ॥
जिय-पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी ॥7॥
सकल-द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥8॥
ये ही आतम के दुख-कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव-प्रदेश बँधै विधिसों सो, बन्धन कबहुँ न सजिये ॥
शम-दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बलतैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥9॥
सकल-कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव, थिर सुखकारी।
इहिविधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट अंग-जुत धारो ॥10॥
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना संवेगादिक चित पागो ॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहुँ कहिये।
बिन जानेतैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥11॥
जिन-वचमें शंका न, धार वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥
निज-गुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निज-धर्म-बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-परको सु दिढ़ावै ॥12॥
धर्मी सों गउ-वच्छ-प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै ॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।

मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै ॥13॥
तपको मद, न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहीं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करै हैं॥14॥
दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक् दर्श सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥15॥
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत समकितधारी॥
तीन लोक तिहुँ काल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुखकारी॥16॥
मोक्ष-महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नर-भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।17॥

चौथी ढाल

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान॥
सम्यकसाथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान दुहूमें भेद अबाधौ॥
सम्यक कारण जान ज्ञान कारज है सोई।
युगपद होते हू प्रकाश दीपकतैं होई॥1॥
तास भेद दो हैं परोक्ष परतछि तिन माहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा।
द्रव्य-क्षेत्र-परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा॥2॥
सकल द्रव्यके गुन अनन्त परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट केवलि भगवन्ता॥

ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन।
इहि परमामृत जन्म जरा-मृत-रोग-निवारन॥3॥
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानीके छिनमाहिं, त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार, अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज-आतम-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥4॥
तातैं जिनवर-कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखि लीजै॥
यह मानुष-पर्याय, सुकुल सुनिवो जिन-वानी।
इह विध गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥5॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारन स्व-पर-विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ॥6॥
जे पूरव शिव गये, जाहिं अरु आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय-चाह-दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै।
तासु उपाय न आन ज्ञान-घनघान बुझावै॥7॥
पुण्य-पाप-फलमाहिं हरख विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल-परजाय उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकलजग-दन्द-फन्द निज-आतम ध्याओ॥8॥
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि दिढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥
त्रस-हिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँघारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै॥9॥
जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारिसों रहै विरत्ता।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन-प्रमाण, ठान तसु सीम न नाखै॥10॥

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण, ठान अन सकल निवारा॥
काहू की धन-हानि, किसी जय हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश होय अघ वनज कृषीतैं॥11॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे यश लाधै॥
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड-हेतु, अघ तिन्हैं न कीजै॥12॥
धर उर समता-भाव, सदा सामायिक करिये।
परव-चतुष्टयमाहिं, पाप तज प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै॥13॥
बारह व्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै॥
यों श्रावकव्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तँहतैं चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै॥14॥

पांचवीं ढाल

मुनि सकलव्रती बडभागी, भवभोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई॥1॥
इन चिंतत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै॥2॥
जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥3॥
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥4॥
चहुँगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा॥5॥
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी॥6॥
जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।

तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा॥7॥
पल-रुधिर राध-मल-थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नवद्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥8॥
जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे॥9॥
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥10॥
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज-काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै॥11॥
किनहू न करै न धरै को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता॥12॥
अन्तिम ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ॥13॥
जे भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारैं, तबही सुख अचल निहारै॥14॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी॥15॥

छठवीं ढाल

षट्काय जीव न हननतैं, सबविधि दरव-हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं॥1॥
अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउकर महीं लखि, समिति ईर्यातैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं॥2॥
छियालीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन पोषते तजि रसन को।
शुचि ज्ञान संजम उपकरन, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन-मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥3॥

सम्यक प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर-मुद्रा देखि मृग-गण, उपल खाज खुजावते॥
रस रूप गन्ध तथा फरस, अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥4॥
समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं प्रत्याख्यान प्रतिक्रम,तजैं तन अहमेव को॥
जिनके न न्हौन न दंत-धोवन, लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयनि में कछु, शयन एकाशन करन ॥5॥
इक बार दिनमें लैं अहार, खड़े अलप निज पानमें।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यान में॥
अरि मित्र महल मसान कंचन कांच निंदन थुति करन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन ॥6॥
तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रतन-त्रय सेवैं सदा।
मुनि-साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भव-सुख कदा॥
यों है सकलसंजमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृति सब ॥7॥
जिन परमपैनी सुबुधि-छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज-भाव को न्यारा किया।।
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो ॥8॥
जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को, विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये तीनधा एकै लसा ॥9॥
परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चितपिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड च्युत पुनि कलनितैं ॥10॥
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो॥

तब ही शुकलध्यानाग्निकर, चउ-घातिविधि-कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥11॥
पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिनमाहिं अष्टम-भू वसैं।
वसुकर्म विनसै सुगुन वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं॥
संसार खार अपार पारावार, तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये ॥12॥
निजमाँहि लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्तकाल, यथा तथा शिव परिणये॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नर-भव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥13॥
मुख्योपचार दुभेद यों बड़ भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन, सुयश-जल-जग-मल हरैं॥
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै तबलौं झटिति निज हित करौ ॥14॥
यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥15॥

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज सुकल बैसाख।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥1॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द - अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥2॥

जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख
धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण
और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है

(पांडुशिला ,सिंघासन, छत्र, चवर प्रातिहार्य,जाप माला ,मंगल कलश, पूजा बर्तन ,चंदोवा,तोरण ,झारी ,

(शुद्ध चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किया जाता है)

नोट:-हमारे यहाँ घरो में उपयोग हेतु ,साधुओ के उपयोग हेतु ,
अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध घी भी आर्डर पर
उपलब्ध कराया जाता है

SOURABH KUMAR JAIN
9993602663
77229 83010
SOURABHJN1989@GMAIL.COM

जय जिनेंद्र

श्री

शुद्ध घी

देशी गाय का शुद्ध घी

शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी

साधु व्रती एवं धार्मिक अनुष्ठानों को ध्यान में रखकर बनाया गया शुद्ध देशी घी

पहले इस्तेमाल करें फिर विश्वास करें

संपर्क सूत्र

CONTACT FOR ORDER
CALL AND WHATSAPP
9993602663
7722983010

Contact for order
Call and whatsapp
9993602663
7722983010

9993602663

10"
11"
13"

11"
13"
15"

णमोकार महामंत्र
णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायणं
णमो लोए सव्वसाहूण
एसो पंच णमोकारो, सव्व-पावप्पणासणो ।।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।

5feet

6.5

18/29
5.5

पीतल डिब्बा सेट

REDMI NOTE 5 PRO
MI DUAL CAMERA

WEIGHT
42040
Essae
DS-852

WEIGHT g
4060
Essae
DS-852

WEIGHT
2.1565

दिगंबर जैन ग्रंथो की पीडीएफ के लिये हमारे whatapp नंबर पर संपर्क करें

09993602663

सौरभ सागर (इंदौर)